ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य दो रुपये

•

पीतलको सोना कहकर चलानेसे न तो सोनेका गौरव
बढ़ता है और न पीतलका। साथ ही पीतल
की भी जाति मारी जाती है।

—शरत्



निवेदन

इस देशमे मेरे ही समान शरत्के असंख्य प्रेमी है। शरत्की लेखनी के निर्झरसे अनेक साहित्यिक सूक्तियोंके मणि-माणिक्य सहसा ही झरते हुए चले गये है। मैने उन्हींको यहाँ ग्रन्थित कर दिया है। आशा है पाठकोको यह प्रयास रुचेगा।

इन उक्तियोमे कहीं धर्म, समाज, साहित्य तथा अनेक प्रचलित धारणाओको चुनौती है, कही अनुभवकी आगमे पके हुए अक्षय सूत्र है, कहीं हृदयकी वेदना पिघलकर मार्मिक चुटकियोमे उच्छ्वसित है और कही घोर-कठोर या खरे सत्य! पाठक पूछना चाहेगे–'क्या ये शरत्के विचार है?" उत्तरमे मै उन्हे पुस्तकके नामकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा—'शरत्की सूक्तियाँ।' ये उक्तियाँ शरत्की बहु-रूपी रचनाओ, यथा—कहानी, उपन्यास, निबन्ध, भाषण और पत्रोसे चुनी गई है। जो अंश गल्प-साहित्यसे लिये गये है उनमे यह निर्णय करना कठिन है कि वह शरत्का अपना मत है—या मात्र एक दृष्टिकोण! मै समझता हूँ कि उन्हें यही मानकर चलना उपयुक्त होगा कि वे शरत्की नहीं, उनके पात्रोकी अपनी परिस्थिति-विशेषकी मान्यताये हैं। यही कारण है कि कभी-कभी इन उक्तियोमे परस्पर अन्तर्विरोध दिखाई देता है। जो अंश निबन्ध और व्याख्यानसे लिये गये है उनमे आपको शरत्के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते है। यह उक्तियाँ कथन या अभिव्यक्ति-चातुर्यको भी ध्यानमे रखकर चुनी गई है। साथ ही उन्हे भरसक छोटा बनानेकी भी चेष्टा की गई है। पुस्तकका उद्देश्य केवल पाठकोकी विचार-दीपशिखाको प्रज्वलित

करना है। जो शरत्‌के विचार जाननेके उत्सुक हैं उन्हें शरत्‌-साहित्य पढ़ना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकोंकी सुविधाके लिए उक्तियोंका उद्गम-स्थल नीचे लिख दिया गया है। रचनाओंके नाम वे हैं जो हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बईसे प्रकाशित शरत्‌ साहित्यमें हैं। इसी मालामें पहले 'पथेर दाबी' का अनुवाद 'पथके दावेदार' नामसे हुआ था, नये संस्करणोंमें वह 'अधिकार' नामसे है, मैंने इसीको लिया है।

अन्तमें निवेदन कर दूँ कि उक्तियोंका चुनाव मेरी अपनी रुचिसे हुआ है। चुनावका रूप ऐसा है, हो सकता है कि अन्य लोगोंके विचारसे कुछ छूट गया हो, या कुछ अनावश्यक हो, लेकिन जिन्होंने शरत्‌-साहित्यका लगनसे अध्ययन किया है उन्हें कदाचित् ऐसा सोचनेका अवसर नहीं मिलेगा।

फिरोजाबाद }
२२-१-'५२ }

—रामप्रकाश जैन

विषय-सूची





शरत्‌की सूक्तियाँ



• • • सत्य और मिथ्या

जो सत्य है, उसीको सब समय, सब अवस्थाओंमें ग्रहण करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इससे चाहे वेद ही मिथ्या हो जायँ, और चाहे शास्त्र ही मिथ्या हो जायँ। वे सत्यसे बढ़कर नहीं हैं, सत्यकी तुलनामे उनका कोई मूल्य नही है।

—चरित्रहीन

कोई भी बात बहुत लोगोंके बहुत ज़ोर देकर कहते रहनेपर भी केवल कहनेके ज़ोरसे ही सत्य नही हो उठती।

—निबन्धावली, नि०—'वर्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्या'

अच्छी तरहसे देखनेपर 'मिथ्या' नामक किसी भी वस्तुका अस्तित्व इस विश्व-ब्रह्माण्डमें नज़र नही पडता। सोनेको पीतल मानना भी मिथ्या है, और मनाना भी,—यह मै जानता हूँ। परन्तु इससे सोने अथवा पीतलका क्या आता-जाता है? तुम्हारी जो मर्ज़ी हो सो उसे मानो। सोना समझ कर उसे सन्दूक़में बन्द करके रखनेसे उसके वास्तविक मूल्यमें वृद्धि नही होती; और पीतल कहकर बाहर फेंक देनेसे उसका मूल्य नही घटता। तुम्हारे मिथ्याके लिए तुम्हें छोडकर न और कोई उत्तरदायी है; और न कोई भ्रूक्षेप ही करता है। मिथ्याका स्थान यदि कहीं है तो मनुष्यके मनको छोडकर और कही नही।

—श्रीकान्त, पर्व १

झूठको इज़्ज़त देकर जितना ऊँचा उठाया जाता है, उतनी ही ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहता है।

—ब्राह्मणकी बेटी,

जहाँ सत्यका बन्धन नहीं है, वहाँ रासको ढीला करना अच्छा नहीं होता। तानना पड़ता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

सत्य जब सचमुच ही मनुष्यके हृदयसे निकल कर सम्मुख आ उपस्थित हो जाता है, तब मालूम होता है कि वह सजीव है,—मानो उसके रक्त-मांसयुक्त शरीर है, और मानो उसके भीतर प्राण भी है,—'नहीं' कहकर अस्वीकार करनेपर मानो वह चोट करके कहेगा, "चुप रहो, मिथ्या तर्क करके अन्यायकी सृष्टि मत करो!"

—श्रीकान्त, पर्व २

सत्य पालन करनेमें दुःख है। उसे कष्ट और आघातोंमेंसे तो किसी न किसी दिन पार भी जा सकता है, पर वंचना या प्रतारणाके काँटे रास्तेसे वह कभी नहीं चलता-फिरता।

—श्रीकान्त

मिथ्याकी तरह सत्यको भी मानवजाति दिन-रात बनाया करती है। शाश्वत सनातन नहीं है यह,—जन्म और मृत्यु दोनों है इसके। मैं झूठ नहीं कहता—मैं प्रयोजनसे सत्यकी सृष्टि करता हूँ।

—अधिकार

मिथ्यासे बहला कर सत्यका प्रचार नहीं हुआ करता। सत्यको सत्य ही की तरह खुलासा कहना चाहिए। सत्यको मिथ्याकी भूमिकासे मुख-रोचक बनानेकी चेष्टाके बराबर और कोई अन्याय नहीं है। मिथ्या पाप है, किन्तु मिथ्याको सत्यमें मिलाकर कहनेके समान पाप संसार में थोड़े ही है।

—चरित्रहीन



••• क्षमा

समयका व्यवधान अपराधकी गुरुताको ज्यों-ज्यों अस्पष्ट करता जाता है, त्यों-त्यों लघु बनाता जाता है, दण्डका भार त्यों-त्यों और भी गुरुतर, और भी असह्य होता जाता है।

—गांधी

कोई भी क्यों न हो, जिसका कार्य-कारण हमें नहीं मालूम, उसे जब हम माफ भी न कर सकें, तो उसका विचार करके कम से कम उसे अपराधी तो न ठहरावें।

—टैगोर

संसारमें ऐसे अपराध कम ही हैं जिन्हें हम चाहें और क्षमा न कर सकें।

टैगोर

बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें क्षमा करनेसे ही उनका अन्त हो जाता है।

—चरित्रहीन

लोग कहते हैं, वह दयाके योग्य नहीं है। दयाके लिए योग्यता, अयोग्यता क्या है? दया जो करता है वह तो अपनी ही गरज़से करता है।

—देना पावना

जिसको लोभ नहीं, जो कुछ चाहता नहीं, उसे सहायता करने जाना—इससे बढ़कर संसारमें और कोई विडम्बना नहीं है।

—श्रीकान्त, पर्व ३

केवल देनेसे ही देना नहीं होता, ग्रहण करनेकी भी तो एक शक्ति है।

—निबन्धावली—साम्प्रदायिक बँटवारा (२)

••• दुःख

दुःख जिसे कहते हैं वह न तो अभावरूप ही है और न दुःखरूप। अर्थात् जो दुःख है, उसका उपभोग सुखकी तरह भी किया जा सकता है।

— [illegible]

दुःखका भोग करनेमें भी एक विलक्षण आनन्दकी मौज है। मनुष्यने अपनी युग-युगकी जीवन यात्रामें यह देखा है कि कोई भी बड़ा फल किसी बड़े भारी दुःखको उठाये बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसके जन्म-जन्मान्तरका अनुभव इस बातको स्पष्ट बतला देता है कि जीवनके रास्तेमें एक समय जितना ही अधिक दुःखका भार लादा जाय, [illegible] और उतना ही अधिक सुखका बोझा ऊपर उठ जाता है।

गरीबीके कष्ट भोगनेकी विडम्बनासे कभी महत्त्वको नहीं पाया जा सकता, हाँ, पाया जा सकता है तो थोड़े-से दम्भ और अहम्मन्यताको।

—शेष प्रश्न

गरीबी या अभाव इच्छासे आवे या इच्छाके विरुद्ध आवे, उसमें गर्व करने लायक कुछ नहीं होता। उसके भीतर है ग्लानि, उसके भीतर है कमजोरी, उसके भीतर है पाप।

—शेष प्रश्न

आनन्द तो नहीं, बल्कि निरानन्द ही मानो उस (हिन्दू समाज) की इस सभ्यता और भद्रताका अन्तिम लक्ष्य बन गया है।

—शेष प्रश्न

मनुष्यका दुःख ही यदि दुःख पानेका अन्तिम परिणाम हो तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

—शेष प्रश्न

दुःखी लोगोंकी कोई अलहदा जाति नहीं है, और दुःखका भी कोई बँधा हुआ रास्ता नहीं है। ऐसा हो तो सभी उसे बचाकर चल सकते।

—देना पावना



••• शिक्षा

जो शिक्षा हमें आनन्द नहीं होने देती, अन्तरकी गौरवगाथाको मिटाकर आत्म-सम्मानपर लगातार चोट पहुँचाती है, कानोंको केवल यह सुनाती रहती है कि हमारे बाप-दादे केवल भूतोंके ओझा, मन्त्र-तन्त्र और ज्योतिषी आदिको लेकर ही व्यस्त थे, उन्हें प्राकृत-कारणके सम्बन्धका ज्ञान नहीं था, और विश्व जगतके अन्यान्य नियमकी ही धारणा नहीं थी,—इसीसे हमारी यह दुर्दशा है, तो उस शिक्षामें चाहे कितना सत्य हो, उसके साथ कितना बाहरी [illegible] सुन्दर ही क्यों न हो, घातक है।

००० साहित्य

कहनेसे ही तो कहना नहीं हो जाता। भ्रमण करना एक बात है और उसका वर्णन करना दूसरी बात। जिसके भी दो पैर है, वह भ्रमण कर सकता है, किन्तु दो हाथ होनेसे ही तो किसीसे लिखा नहीं जा सकता।

—श्रीकान्त, पर्व १

एक दफे समालोचकोंके लेखोंको पढकर देखो, बिना हँसे रहा नहीं जाता। कविको अतिक्रम करके वे काव्यके मनुष्यको चीन्ह लेते है और ज़ोरके साथ कहते है,"यह चरित्र किसी तरह भी वैसा नहीं हो सकता—वह चरित्र कभी वैसा नही कर सकता," ऐसी और कितनी ही बाते है। लोग वाहवाही देकर कहते है, "वाह इसीको तो कहते है क्रिटिसिज़्म (आलोचना)! इसीको तो कहते है चरित्र-समालोचना।

—श्रीकान्त, पर्व १

ऐसा ही होता है। दूसरेका विचार करते समय किसी मनुष्यको कभी यह कहते नहीं सुना कि वह अन्तर्यामी नही है, अथवा कही उसका भ्रम या प्रमाद हो सकता है। सभी कहते हैं कि मनुष्यको चीन्हनेमें हम बेजोड है, इस विषयमें हम एक पक्के जौहरी है।

—श्रीकान्त, पर्व २

चिरस्थायी प्रेम कलाकारोंके मार्गका विघ्न है, उनकी सृष्टिके लिए अन्तराय है, उनके स्वभावका परम विरोधी है।..... असलमें वे प्रेम करते है सिर्फ अपने आपसे।

—शेष प्रश्न

इसीके अनन्तर मनुष्यके समक्ष जब अपने निजके विवेक और संस्कारके बीच स्वाधीन विचार और पराधीन ज्ञानके बीच, संघर्ष छिड़ता है तब दूसरोंको उपदेश देने जाने जैसी विडम्बना संसारमें शायद ही होती हो।

— [illegible]

यह अस्वाभाविक होगा, और अस्वाभाविक चीज टिकती नहीं। व्यक्तियोंके लिए अलग-अलग सोचा जा सकता है, पर साहित्य नहीं रचा जा सकता। उनके दुःख-सुखोंका वर्णन करनेका नाम ही साहित्य नहीं है। जिस दिन अगर समझ लगा तो अपना साहित्य वे खुद ही रचेंगे।

— [illegible]

कल्पित जातिकी खोज नहीं की जाती।

"कवि.—तुम बडे तो हो ही। तुम्हारा परिचय ही तो जातिका सच्चा परिचय है। तुम लोगो (कवियो, कलाकारो) को छोड देनेसे उसका वजन किस चीजसे किया जायगा? (जब देश स्वतन्त्र हो जायगा) तुम्ही तो देशकी समस्त विच्छिन्न विक्षिप्त धाराओको एक सूत्रकी तरह एकत्र गूँथ जाओगे।"

—अधिकार,

मेरी इतनी प्रशंसासे तुम्हे शायद संकोच होगा, और शायद सभी मेरे साथ एकमत भी नही होगे। लेकिन (कहानी कलाका) मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आजके युगमे रवि बाबूको छोडकर कोई नही है।

—पत्रावली, उपेन्द्रनाथ गं० पा० को

जो लिखना नही जानते; अर्थात् जिनकी रचनाओकी परख नही हुई है, वे चाहे जितने बडे आदमी क्यो न हो, जाने बग़ैर उनकी लम्बी रचनाएँ छापनेमे निराशाकी सीमा नही। ये लोग समझते है कि सारी बात कहनी ही चाहिये। जो कुछ देखते है, सुनते है, जो कुछ होता है, समझते है सब कुछ लोगोको दिखाना-सुनाना चाहिए। लेकिन लम्बे अनुभवसे अन्तमे समझ जाते है कि बात ऐसी नहीं है। बहुत-सी चीज़े छोड़ देनी पड़ती है, बहुत कुछ बोलनेके लोभका संवरण करना पडता है। बोलने या अंकन करनेसे न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्म-सयम, बहुत लोभका दमन करना पडता है, तभी सचमुच बोलना और अंकन करना होता है।

—पत्रावली, हरिदास चट्टो० को

जो लोग अन्धाधुन्ध नारी-जातिके प्रति ग्लानिके प्रचारको ही यथार्थवाद समझते है उनमे आदर्शवाद तो है ही नही, यथार्थवाद भी नही है। है केवल अभिनय और झूठी स्पर्द्धा—न जाननेका अहंकार।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

केवल लिखना ही कठिन नहीं है, न लिखनेकी शक्ति भी कुछ कम कठिन नहीं है।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

जीवनमें जिसने प्यार नहीं किया, कलंक मोल नहीं लिया, उसकी दूसरेके सुखके लिये गाये स्वादभरी कल्पना सच्चे साहित्यकी सामग्री कब तक बनेगी? जिसका अपना ही जीवन नीरस है, बंगालकी बाल-विधवाकी तरह पवित्र है, वह प्रथम जीवनके अंतमें लिखना भी शुरू करे, तो उसमें सब कुछ मरु-भूमिकी तरह शुष्क श्रीहीन हो उठेगा।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

मैं भी उन बातोंको नहीं मानता—जैसे कला कलाके लिए, धर्म धर्मके लिए, सत्य सत्यके लिए, आदि। कलाकी उपलब्धि सबकी एक तरहकी नहीं होती। वह अनुभवकी वस्तु है। उसकी व्याख्या निर्दिष्ट करने जाना और उसमें वाद ही एक तोफ़ा बना देना भी ठीक है। धर्म, सत्य, आदि केवल बातें ही नहीं हैं। उनमें भी कुछ अधिक है। कलाकारका उद्देश्य अगर चित्तरंजन करना ही है तो भी यह मान कर चलना है कि वह दो स्वामियोंका सेवक है—चित्त और रंजन। किन्ही

इन बातासे मैं एकमत हूँ और उस आदमीकी '—' ये पक्तियाँ भद्दी है, अमुक लेखककी '—' इन पक्तियोंने बडे ही सुन्दर ढंगसे प्रकट किया है, आदि-आदि। ये बातें अत्यन्त रूखे ढंगसे पाठकसे कहना चाहती है कि तुम लोग देखो कि इस छोटीसी उम्रमें मैंने कितना समझा है, कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

महिलाओंके विरुद्ध कडी बातें लिखना बहादुरी हो सकती है, लेकिन उस पथ पर चलकर सच्चे साहित्यका सृजन नहीं हो सकता।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

उपमा—उदाहरण कोईभी चीज़ रवीन्द्रनाथकी तरह निरर्थक और असम्बद्ध न हो उठे। मनुष्यको अलंकारसे सजानेकी रुचि और सुनारकी दूकानमें अलंकारोंसे 'शोकेस' के सजानेकी रुचि एक नहीं है। अलंकृत वाक्यका बाहुल्य कितना पीड़ादायक होता है, इस बातको केवल पाठक ही जानते हैं।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

वर्तमान काल ही साहित्यका चरम हाई कोर्ट नहीं है।

—पत्रावली, अतुलानन्द रायको

ग्रन्थकार किसी विशेष जाति-सम्प्रदायका नहीं होता। वह हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई सब कुछ है।

—पत्रावली, काजीवदूदको

कवि केवल सृष्टि ही नहीं करता, सृष्टिकी रक्षा भी करता है। जो स्वभावसे ही सुन्दर है उसे और भी सुन्दर करके प्रकट करना जैसे उसका एक काम है, वैसे ही जो सुन्दर नहीं है उसे असुन्दरके हाथसे बचा लेना भी उसका दूसरा काम है।

—चरित्रहीन

"तुम्हारे भीतर कुछ है जो सच्चा प्रेमिक है, सचमुच कवि है। इस चीज़को अगर तुम मार डालना नहीं चाहते हो, तो इसकेको अप-राधी बनानेके सुखसे तुम्हें अपनेको वंचित करना ही होगा। यह बात कभी मत भूलो कि कवि विचारक नहीं होता। नीतिशास्त्रके मतके साथ यदि तुम्हारा मत अक्षरशः मेल न खाय, तो इसके लिए लज्जित न होना। मुल्कके अदालतमें जज साहब जब अभागे अपराधियोंको प्राणदण्ड देते हैं, तब वह विचारक होते हैं, किन्तु जब अपराधीके स्वजनों सम्बन्धियोंका अनुभव करके वह सजा रद्द कर देते हैं, तब कवि हो जाते हैं।"

—[illegible]

जो असुन्दर है, जो अनैतिक है, जो असत्य है, वह किसी तरह सत्य नहीं है, धर्म नहीं है। इसी तरह हमारे लिए, वह मुक्ति भी किसी तरह साध्य नहीं है।

दुनियामें जो कुछ सत्य ही घटित होता है उसीको बिना विचारे और सोचकर साहित्यका उपकरण बनानेसे वह सत्य तो हो सकता है, पर सत्य-साहित्य नहीं होता।

—निबन्धावली, साहित्य और नीति

आधुनिक साहित्य—दुर्नीतिका वह प्रचार नहीं करता। थोड़ा-सा थहाकर देखनेसे उसकी सारी दुर्नीतिके मूलमें शायद यही एक चेष्टा मिलेगी कि वह मनुष्यको मनुष्य ही सिद्ध करना चाहता है।

—निबन्धावली, आधुनिक साहित्यकी कैफियत

आत्मरक्षाके बहाने भी मनुष्यका असम्मान करना मुझसे नहीं होता। लोग कहते हैं कि मैं पतिताओंका समर्थन करता हूँ। समर्थन मैं नहीं करता; केवल उनका अपमान करनेको मेरा मन नहीं चाहता। मैं कहता हूँ कि वे भी मनुष्य हैं, उन्हें भी फरियाद करनेका अधिकार है और महाकालके दरबारमें इसका विचार एक दिन अवश्य होगा।

—निबन्धावली 'शेष प्रश्न'

भाषा जिस जगह दुर्बल और शंकित है, सत्य जिस देशमें नकाब डाले बिना पग नहीं बढ़ा सकता, लेखकोंका दल जिस राज्यमें इतनी बड़ी उंछवृत्ति करनेके लिए बाध्य है, उस देशमें राजनीति, धर्म-नीति, समाजनीति सब ही यदि एक दूसरेका हाथ पकड़े केवल नीचेकी ओर उतरती जायँ तो इसमें आश्चर्य होनेकी क्या बात है?

—निबन्धावली—सत्य और मिथ्या

कोरी कल्पना केवल गढ़ ही सकती है, उसमें (साहित्य रचनामें) जान नहीं डाल सकती—ढो सकती है, पर राह नहीं दिखा सकती।

—चरित्रहीन



× × × कि हमारा हिन्दू समाज आज भी जीवित है—

अपना अस्तित्व मात्र बनाये रखना ही क्या जीवनकी चरम सार्थकता है ? इस तरह तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए जीवित हैं। कोरकू हैं, कोल, भील, संथाल हैं, प्रशान्त महासागरके और छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियाँ भी मनुष्य-सृष्टिके शुरूसे आजतक वैसी ही बनी हुई हैं। उन जातियोंमें भी ऐसे सब कठोर आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रोम खड़ा हो जाता है। उनके हिसाबसे ये जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अतिरिक्त हिन्दुओंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और उनसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसीलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत संशय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। × × (जो समाज प्रतिदिन आँख मूँदकर नर और नारियोंकी बलि किया करता है) जो समाज अपनोंकी हत्या-सी भी उचित बनानेसे गर्वित नहीं होता, उस निर्दई निर्जीव समाजसे हिन्दू भी अपने मनमें स्थिर ज्ञान तौलकर अनुमान नहीं कर सकता।

नहीं। धनी ज़मींदार पुलाव खाया करता है। वह अपनी किसी दरिद्र प्रजाको बासी भात खाते देखकर सोचता है कि 'इसके दुःखकी कोई सीमा नहीं है'—जिस तरह वह भूलता है, उसी तरह तुम भी भूलते हो।

—श्रीकान्त पर्व २

तुम जैसे लोग ही समाजकी अधिक निन्दा करते फिरते हैं, जो समाज से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते, बल्कि उसकी ओरसे सर्वथा उपेक्षित रहते है। तुम लोग न तो अच्छी तरह पराये समाजको जानते हो और न अच्छी तरह अपने ही समाजको।

—श्रीकान्त, पर्व २

घरकी मालकिन सब लोगोंसे ख़राब खाती-पीती है, कभी-कभी तो नौकरोंकी अपेक्षा भी। बहुधा उसे नौकरोंसे भी अधिक मेहनत करनी पड़ती है; किन्तु, तुम (मर्द) इस दुःखसे व्याकुल होकर रोते हुए मत फिरो; हम लोगोंको दासीके समान ही बनी रहने दो, दूसरे देशों-जैसी रानी बना डालनेकी चेष्टा मत करो।

श्रीकान्त पर्व २

एकका मर्मान्तक दुःख जब कि दूसरेके लिए उपहासकी वस्तु हो जाता है, तो इससे बढ़कर, ट्रैजेडी संसारमें और क्या हो सकती है? फिर भी होता यही है। लोक-समाजमें रहते हुए भी जिस आदमीने लोकाचारको नहीं माना—विद्रोह किया है, वह फ़रियाद भी करे तो किससे?

—श्रीकान्त, पर्व ३

× × अफसोस तो इस बातका है कि मनुष्य, पड़ोसी होकर, अपने दूसरे पड़ोसीकी जीवन-यात्राका मार्ग, बिना किसी दोषके, इतना दुर्गम और दुःखमय बना दे सकता है, ऐसी हृदयहीन निर्दय बर्बरताका उदाहरण दुनियामें शायद सिर्फ हिन्दू-समाजके सिवा और कहीं न मिलेगा।

—श्रीकान्त, पर्व ३

किसकी इच्छा नहीं होती कि अपनी लड़कियाको यथासमय अच्छी जगह ब्याह दे मगर दें कैसे? समाज कहता है कि लड़कीकी उम्र हो चुकी, ब्याह कर दो, मगर ब्याहनेका इन्तज़ाम नहीं कर देता।

—परिणीता

ऐसे समाजसे तो जात जाना ही अच्छा है। पेट भरे या भूखे रहें, शान्तिसे तो रह सकते है। जो समाज दुःखीका दुःख नहीं समझता, आफत-विपतमें हिम्मत नहीं बँधाता; वह समाज मेरा नही—मुझ-जैसे ग़रीबोंका नही है; वह समाज तो बड़े आदमियोंका है।

—परिणीता

जो है नही, उसे मै नही मानता। भगवान् नही है, देवी-देवता भी झूठी कल्पना हैं। परन्तु जो हैं, उन्हें तो अस्वीकार नही करता। समाजपर मै श्रद्धा करता हूँ, मनुष्यकी मै पूजा करता हूँ। जानता हूँ कि मनुष्यकी पूजा करना ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

—गृहदाह

हमारी बातोंसे पाठकोंको यह भ्रम नही होना चाहिए कि हम तलाक (Divorce) को कोई अच्छी चीज़ बतला रहे है। मारपीट भी कोई अच्छी चीज़ नही है और अवश्य ही कोई इस बातकी कामना नही करता कि समाजमे मार-पीट बराबर होती रहे। लेकिन जब हम लोगोंमें स्त्रीका त्याग कर देना प्रचलित है, तब वह त्याग स्त्री और पुरुष दोनोंके ही पक्षमें क्यों उचित नही है? स्त्री क्यो न अपने पुरुषका त्याग कर सके?

—नारीका मूल्य

विशेषतः इस देशके पुरुष जो स्वयं ही कायर और भीरु होते है, जो अन्यान्य देशोंके पुरुषोंकी तुलनामें नारियोंकी ही तरह निरुपाय होते हैं, जो नारियोंके सामने पुरुषोंके रूपमें अपना परिचय देनेकी यथार्थ

समझाने चलते हैं, वे कामकोंको तथा अपनी अपेक्षा अधिक दुर्बल और निरपराध (भी) का भी उत्पीड़न करके अपने फायदेके वास्ते आनन्द प्राप्त करना चाहेंगे।

—[illegible]

जिस पुरुषने यह जानकर कि मुझसे सारीके [illegible] कहा नहीं, ही कहेंगे—"पति नारी विरहिता" (अर्थात सारीमें नारियाँ [illegible] वर्जित हैं) वाला शास्त्र बनाया है, उसकी मान्यता भी उतनी ही शून्य मानना उचित है, और यही सबसे अच्छा न्याय है।

—[illegible]

जब जो मनुष्यको अपना [illegible] और [illegible] समझता है, वह जो [illegible] है, वह जो निर्दोष भाव है, उस अवस्थामें भगवान् [illegible] नहीं कर पाते।

मिलन (हिन्दू-मुसलिम) संघटित होगा, हिन्दुओंकी समस्या यह है कि किस तरह वे संघबद्ध हो सकेंगे, और हिन्दू धर्मावलम्वी किसी भी व्यक्ति को छोटी जाति कहकर उसका अपमान करनेकी उनकी दुर्बुद्धि किस तरह और कब जायगी। और सबसे बडी समस्या यह है कि हिन्दूके अन्तःकरणका सत्य किस तरह उसके प्रतिदिनके प्रकाश्य आचरणमें फूलकी तरह विकसित हो उठनेका सुयोग पावेगा। जो सोचता हूँ, वह कहता नहीं, जो कहता हूँ वह करता नहीं, जो करता हूँ उसे स्वीकार नहीं करता—आत्माकी इतनी बडी दुर्गति बरक़रार रहते हुए समाज-देहके असंख्य छिद्र स्वयं भगवान् आकर भी बन्द नहीं कर सकेंगे।

—शरत् निबन्धावली, वर्तमान हिन्दू-मुसलमान समस्या

जात और कुल यदि सत्य है; तो क्या दो आदमियोंके सारे जीवनका सुख-दुःख ही झूठ है।

—ब्राह्मणकी बेटी

• • • नारी

न जानते हुए नारीके कलंककी बातपर अविश्वास करके संसारमें ठगा जाना भला है, किन्तु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व १

स्त्रियोंकी चरम तृप्ति क्या विवाहमें ही है?

—ब्राह्मणकी बेटी

“पुरुष कितना ही बुरा क्यों न हो, यदि वह भला होना चाहता है तो उसे कोई रोकता नहीं; तब फिर हमलोगों (स्त्रियों) की बारी आने पर सब मार्ग क्यों बन्द हो जाते हैं?”

—श्रीकान्त, पर्व २

स्त्रियाँ मर्द नहीं हैं—दोनोंके आचार-व्यवहार एक ही तराजूमें नहीं तौले जा सकते; और तौले भी जायँ तो कोई लाभ नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व २

पुरुष-जाति चिरकालसे ही उच्छृंखल रही है,—चिरकालसे ही उच्छृंखल अत्याचारी भी रही है; किन्तु इसीलिए तो स्त्रीके उसके साथ होड़ करनेको युगल स्थान नहीं दे सकती। स्त्री-जातिको सहन करना ही होगा; नहीं तो संसार नहीं चल सकता।

—श्रीकान्त, पर्व २

इस तरहकी स्त्रियाँ अपने-आपको छोटा समझनेमें अपना छोटापन नहीं समझ लेती हैं। सच तो यह है कि उन्हीं (पुरुषों) लोगोंने उन्हें छोटा समझकर छोटा बना दिया है, और उन्हें खुद भी छोटे हो गये हैं।

—श्रीकान्त, पर्व

समस्त रमणियोंके अन्तरमें 'नारी' वास करती है या नहीं, यह ज़ोरसे कहना अत्यन्त दुःसाहसका काम है। किन्तु नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमें है, यह बात खूब गला फाड़ करके प्रचारित की जा सकती है।

—श्रीकान्त, पर्व २

शायद अत्यन्त दुःखमेंसे ही नारियोंका सच्चा और गहरा परिचय मिला करता है। उन्हें पहचान लेनेकी ऐसी कसौटी भी और कुछ नहीं हो सकती, और पुरुषके पास उनका हृदय जीत लेनेके लिए इतना बड़ा अस्त्र भी और कोई नहीं होगा।

—श्रीकान्त, पर्व ३

"अपनेको पहचाननेमें भी तो देर लगती है—"

"देर लगने दो, फिर भी पुरुष पहचान जाते हैं। पर औरतोंपर तो ऐसा अभिशाप है कि मरते दम तक उनकी ज़िन्दगी अपनी तकदीर समझनेमें ही बीत जाती है।

—षोडशी

(स्त्री पात्रके मुँहसे) स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं। मैं समस्त स्त्री-जातिको दोष देती हूँ,—विधाताको दोष देती हूँ कि उन्होंने क्यों इतने कोमल और जलके समान तरल पदार्थसे नारीका हृदय गढ़ा था।

—बड़ी बहन

स्त्री शरीर धारण करके (पति-पुत्रको बनाकर खिलाने) इससे अधिक सुखकी बात न तो वह (एक स्त्री पात्र) सोच ही सकती है, और न उसकी कामना ही करती है। वह सोचती है कि जो स्त्री नित्य यह काम करती है, उसके लिए इस संसारमें और कुछ भी बाकी नहीं रह जाता।

—पण्डितजी

स्त्रियोंके लिए सबसे बड़ी सीखनेकी बात है क्षमा करना।

—पण्डितजी

इतना अधिक रुपया एक आदमी (निःस्वार्थ भावसे) किसी दूसरे आदमीको दे दे, इस बातको कोई भी स्त्री प्रसन्नचित्तसे स्वीकार नहीं कर सकती।

—परिणीता

औरतोंकी छाती फटे तो फटे पर मुँह नहीं फटता।

—परिणीता

फिर भी सब तरहका अपराध उसके (स्त्री) माथेपर लादकर वह उसका विचार कर रहा था, और अपनी ही ईर्ष्यासे, अपने ही क्रोधसे, अपने ही अभिमान और अपमानसे अपने-आप जल-मर रहा था। शायद, इसी तरह संसारके सभी पुरुष स्त्रियोंका विचार करते हैं और इसी तरह जलते हैं।

—परिणीता

इस अभागे देशके लिए आज भी अगर कोई गौरव करनेकी चीज़ मौजूद है, तो वह तुम्हारी जैसी (सती) स्त्रियाँ। ऐसी चीज़ शायद और कोई भी देश नहीं दिखा सकता।

—गृहदाह

मणि-माणिक्य बहुत मूल्यवान वस्तुएँ हैं, क्योंकि वे दुष्प्राप्य हैं। इस हिसाबसे नारीका मूल्य अधिक नहीं है, क्योंकि यह संसारमें दुष्प्राप्य नहीं है।

—नारीका मूल्य

नारीका मूल्य क्या है? अर्थात् वे कहाँतक सेवा-परायण, स्नेह-शील, सती और दुःख तथा कष्ट सहते हुए मौन रहती हैं? अर्थात् उनके

द्वारा पुरुषको कहाँ तक सुख और सुभीता हो सकता है और कहाँ तक वे रूपसी है ? पुरुषकी लालसा और प्रवृत्तिको वे कहाँतक निबद्ध तथा तृप्त रख सकती है ?—हम यह बात पृथ्वीका इतिहास खोलकर प्रमाणित कर सकते है कि स्त्रियोका मूल्य निश्चित करनेके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग है ही नहीं।

—नारीका मूल्य

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात् जहाँ स्त्रियोकी पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते है और जहाँ नही होती, वहाँ सारे काम निष्फल होते है।

अवश्य—हम लोग पूजा तो करते है, लेकिन किस तरह करते है ? इसपर चर्चा करनेपर ऐसी बहुत-सी बाते निकल पडनेकी सम्भावना रहती है जिन्हे बाहर (विदेशी) लोगोको सुनानेसे किसी तरह काम नहीं चल सकता।

—नारीका मूल्य

जिस धर्मने बुनियाद ही रक्खी है आदिम जननी हौवाके पाप पर, और जिस धर्मने नारीको बैठा रक्खा है संसारके समस्त अधःपतनके मूलमें, उस धर्मके सम्बन्धमे जिन लोगोके मनमें यह विश्वास है कि सच्चा धर्म यही है, उन लोगोसे यह कभी हो ही नही सकता कि वे नारी-जातिको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखे। ऐसे लोगोकी श्रद्धा केवल उतनी ही हो सकती है जितनेमे उनका स्वार्थ लगा हुआ है। इससे अधिकको चाहे श्रद्धा कहो, चाहे उनका न्यायोचित अधिकार कहो, वह न तो पुरुषने उन्हे आजसे हज़ार बरस पहले दिया है, और न आजके हज़ार बरस बाद ही देगा।

—नारीका मूल्य

पुरुष जो कुछ चाहते हैं, और जिसके बारेमें वे यह प्रचार करते हैं कि यह धर्म है, नारियाँ उसीपर विश्वास कर लेती हैं, और पुरुषोंकी इच्छाको ही अपनी इच्छा मानकर भूल करती हैं, और भूल करके सुखी होती हैं। हो सकता है इसीसे नारियोंका गौरव बढ़ता हो, लेकिन उस गौरवसे पुरुषोंका अगौरव दब नहीं सकता।

—नारीका मूल्य

आश्चर्य तो इस बातका है कि इतना अत्याचार, अविचार और पैशाचिक निष्ठुरता सहन करनेपर भी स्त्रियाँ सदासे पुरुषोंके साथ स्नेह करती आई हैं, उनपर श्रद्धा रखती आई हैं, उनकी भक्ति करती आई हैं और उनका विश्वास करती आई हैं। जिसे वह पिता कहती हैं, भाई कहती हैं, स्वामी कहती हैं, जान पड़ता है कि उसके सम्बन्धमें कभी स्वप्नमें भी उन्हें इस बातका ध्यान नहीं हुआ कि वह इतना अधिक नीच और ऐसा प्रवंचक है। मालूम होता है कि इसी जगह उसका मूल्य है।

—नारीका मूल्य

यदि कहीं कठोर अत्याचार और अविचारके बदलेमें भी स्नेह और प्रेम हो सकता है, तो यह स्त्रियोंमें ही हो सकता है।

—नारीका मूल्य

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥ —मनुस्मृति

अर्थात् सन्तान जनना, जने हुओंका पालन करना और नित्यकी लोकयात्रा चलाना ये स्त्रीके काम हैं।

नारियोंका सम्मान स्वयं उनके कारण नहीं होता, बल्कि वह उनके सन्तान और पुत्र-प्रसव करने पर निर्भर रहता है।

—नारीका मूल्य

नारियोंका वास्तविक मूल्य तो उस समय था जब वे पुरुषोंके मुखसे 'देवी' सम्बोधन सुनकर ही गद्‌गद नहीं हो जाती थीं, बल्कि वह पुरुषोंको मुँहसे कही हुई बात कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए विवश करती थीं।

—नारीका मूल्य

नरकका द्वार कौन ? स्त्री।

—जगद्‌गुरु शंकराचार्य

ठीक ही तो है। चाहे जिस कारणसे हो, जो नारी केवल एक बार भी भूल करती है, उसके साथ हिन्दू किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं रखता। इसके उपरान्त क्रमशः जब वह भूल उसके जीवनमें पापरूपसे सुप्रतिष्ठित हो जाती है, और जब वह वेश्या हो जाती है, तब फिर इस वेश्याके अभावमें हिन्दूका स्वर्ग भी सर्वांग सुन्दर नहीं होता। उसकी इतनी अधिक आवश्यकता मानी जाती है।

—नारीका मूल्य

इस देशके लोगोंने जिस प्रकार आदरपूर्वक श्रीकृष्णके 'काला सोना,' 'काला माणिक' आदि अष्टोत्तर शत नाम रखे थे, हम समझते हैं कि संस्कृत साहित्यमें भी वेश्याके आदरपूर्ण नाम शायद उससे कम नहीं हैं। इन्हीं सब बातोंसे यह समझा जा सकता है कि स्वार्थपरता और चरित्रगत पापबुद्धि नर और नारीमेंसे किसके अधिक है, और किसे अधिक दंड देना आवश्यक है।

—नारीका मूल्य

चाहे कोई देश हो, चाहे कोई जाति हो, जब समाजमें नारीका स्थान बहुत नीचा हो जाता है, तब उसके साथ ही साथ शिशुओंका स्थान भी नीचे उतर आता है।

—नारीका मूल्य

मिथ्याकी कभी जीत नहीं होगी। यदि इस हिसाबसे जाँचकर देखा जाय तो नारीको जो मूल्य पुरुष अब तक देता आया है, उससे यदि अब तक बराबर उसका (पुरुष) भला ही होता आया हो तो निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि वही नारीका प्राप्य मूल्य है। और नहीं तो यह बात स्वीकृत करनी पड़ेगी कि पुरुषोंने नारीको अब तक ठगा है, उसे सताया है, साथ ही साथ समाजपर अकल्याण भी लाकर लाद दिया है।

—नारीका मूल्य

देखा जाता है कि जो समाज जितना ही नीचा होता है, और जिस समाजमें नारीकी दशा जितनी ही अधिक दुःखपूर्ण तथा कष्टमय होती है, उसमें नारीका सौन्दर्य भी उतना ही अल्प तथा उतना ही अधिक क्षण-स्थायी होता है।

—नारीका मूल्य

ज्यों-ज्यों समाजमें नारीका स्थान नीचे उतरता आता है, त्यों-त्यों नर और नारी दोनोंके जीवित रहनेका काल भी बराबर कम होता जाता है।

—नारीका मूल्य

उस देशका बड़ा दुर्भाग्य है जिस देशकी नारियाँ स्वयं बिना खाये पुरुषोंको नहीं खिला पातीं, और जहाँ साथ बैठकर खाना पड़ता है।

—दत्ता

नारी जातिको कभी खाली हाथ नहीं बैठना चाहिए।

—द...

जिस चीज़से एक बच्चेको बहकाया जा सकता है, उसीसे ला... बच्चोंको भी बहकाया जा सकता है। संख्याका बढ़ जाना ही यु... बढ़नेका प्रमाण नहीं है। एक दिन जिन लोगोंने कहा था कि नर-ना... ...ही मानव-सभ्यताका सबसे सत्य इतिहास है, उन...

सबने बढकर सत्यका पता पाया था; किन्तु जिन लोगोंने यह घोषणा की कि पुत्रके लिए भार्याकी आवश्यकता है, वे स्त्रियोंका सिर्फ अपमान ही करके शान्त नही हुए, बल्कि अपने बड़े होनेका रास्ता भी चिरकालके लिए बन्द कर गये।

—शेष प्रश्न

संसारमें होने वाली अनेक घटनाओंमेंसे विवाह भी एक घटना है, उससे ज्यादा कुछ नही। उसीको जिस दिनसे नारीका सर्वस्व मान लिया गया है, उसी दिनसे स्त्रियोंके जीवनकी सबसे बडी ट्रैजडी शुरू हो गयी है।

—शेष प्रश्न

(नारी से) जीवनमे कल्याणको कभी अस्वीकार न करना। उसका सत्य-रूप आनन्दका रूप है। उसी रूपमें वह दिखाई देता है,—वह और किसी तरह पहचाना भी नही जा सकता।

—शेष प्रश्न

स्त्रियाँ जब श्रद्धा-भक्ति करने लगती है तो शिकायत नही करती। देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर भी वे पूजा बन्द नही करती, कहती हैं—'दुःख उन्होने अच्छेके लिए ही दिया है।'

—विप्रदास

अनेक दुःखोंसे ही नारी अपना धर्म नष्ट करनेके लिए तैयार होती है, और जिस लिए होती है, वह पर-पुरुषका रूप नही, किसी वीभत्स प्रवृत्तिका लोभ भी नहीं। जब वे अपनी इतनी बडी वस्तुको नष्ट करती हैं, तो बाहर जाकर किसी आश्चर्यजनक वस्तुको पानेके लोभसे नहीं, सिर्फ किसी बातसे अपनेको मुक्त करनेके लिए ही इस दुःखको सिरपर उठा लेती हैं।

—पत्रावली-लीलारानी गंगो० को

स्वर्गीय गिरीश बाबूने अपने 'आबू हसन' में लाख बातकी एक बात कही है—"अबलाएँ बड़ी लालची होती हैं, वह मरनेपर भी खाती है।" औरतकी जातिको उन्होंने पहचान लिया था।

—पत्रावली–लीलारानी गंगो० को

लड़कियाँ (फैशनेबुल) मे साढ़े पन्द्रह आने कुरूपा होती हैं। सिर्फ साबुन, पाउडर और कपड़े-लत्तो और अनुनासिक गलेसे जहाँ तक चल जाय।

—पत्रावली-लीलारानी गंगो० को

"मै स्त्रीकी जातिकी हूँ। स्त्रियाँ भला क्या बीमार पड़ती है, या इस तरह (कठोर परिश्रम करनेसे) मर जाती है? तुमने क्या कभी सुना कि अयत्नसे, अत्याचारसे कोई औरत मर गई है। भगवान्ने स्त्रियोंके शरीरमे क्या प्राण दिये है जो जायेंगे? मुझे तो जान पड़ता है, इस स्त्री-जातिको गलेमें रस्सी बाँधकर दस-बीस साल-तक टाँग रक्खा जाय तो भी वह नही मर सकती।"

—चरित्रहीन

हिन्दू-घरकी किसी भी औरतको शायद इसके लिए (आलस्य) बदनाम नहीं किया जा सकता। जानते हो, चाहे सगा हो, चाहे गैर; किसी भी पुरुषका भोजन नहीं हुआ है, सुनकर हिन्दू-स्त्री मर रही होगी तो भी उसे खिलाने-पिलानेके लिए उठ खड़ी होगी।

—चरित्रहीन

सन्तान-धारण करनेके लिए जो लक्षण सबसे अधिक उपयोगी है, वह है नारीका रूप। सारे जगत्के साहित्यमे, काव्य मे, यह वर्णन ही उसके रूपका वर्णन है।

—चरित्रहीन

विश्वका हरएक अणु परमाणु निरन्तर नये रूपमें अपनी सृष्टि करना

चाहता है। वह बिना थके बराबर इसी उद्योगमें लगा रहता है कि किस तरह अपनेको विकसित करे। इसी कारण पुरुष, नारीमें जब ऐसा कुछ पाता है, जिसमें जाने या बिना जाने, वह अपनेको और भी सुन्दर, और भी सार्थक बना सकेगा तो उस लोभको वह किसी तरह रोक नहीं सकता।

—चरित्रहीन

पुरुषके मनका भाव, उसका अन्याय और अविचार सभी जगह समान है। नारीको उसके न्याय-संगत अधिकारसे न्यूनाधिक प्रायः सभी देशोंके पुरुषने वंचित कर रखा है। (लेकिन फिर भी) मैं जानता हूँ इस वंचिता नारीका दान न मिलनेपर इस संसारव्यापी नरमेध (विश्व युद्ध) के प्रायश्चित्तका परिणाम आज क्या होता !

—निबन्धावली—स्वराज्यकी साधनामें नारी

मर्दोंके लिए चकमा देनेका रास्ता खुला है, लेकिन जिसे कहीं, कभी किसी तरह छुटकारेका मार्ग नहीं है, वह है केवल नारी। इसीसे सतीत्व की महिमाका प्रचार ही विशुद्ध साहित्य हो उठा है।

—निबन्धावली—साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

नारीका एक तरहका रूप होता है, जिसे जवानीके दूसरे सिरेपर पहुँचे बिना पुरुष कभी किसी दिन नहीं देख पाता।

—देना पावना

भगवान्‌पर भरोसा रखनेके लिए जितना ज़ोर चाहिए, उतना ज़ोर औरतोंकी देहमें नहीं होता।

—विराज बहू

जिस तरह नारीके दैहिक सौन्दर्यके समान सुन्दर वस्तु इस संसारमें नहीं है, उसी तरह इसकी विकृतिके समान असुन्दर वस्तु भी शायद ही पृथ्वीपर कोई हो।

—शेष प्रश्न

••• सतीत्व

रामायण, महाभारत और पुराणों आदिमें बार-बार इस बातकी आलोचना की गई है कि यह सतीत्व नारीका कितना बड़ा धर्म है। यहाँ तो स्वयं भगवान् तक इस सतीत्वकी चपेटमें आकर अनेक बार अस्थिर हो चुके हैं।

—नारीका मूल्य

अंग्रेज़ भी कहते हैं कि आचरणकी पवित्रता (Chastity) होनी चाहिए, पर वे इसके द्वारा पुरुष और स्त्री दोनोंका ही निर्देश करते हैं। और हमारे देशमें जिस शब्दका अर्थ 'सतीत्व' होता है, वह केवल नारियोंके लिए है। यह ठीक है कि शास्त्रकार लोग वनोंमें रहते थे, लेकिन फिर भी वे लोग समाजको पहचानते थे और इसीलिए वे लोग एक शब्द बनाकर भी अपने जाति-भाइयों अर्थात् पुरुषोंको संकट या परेशानी (Inconvenience) में नहीं डाल गये।

—नारीका मूल्य

शास्त्रोंने कहा है कि नारी केवल मातृत्वके कारण ही पूजनीया होती है। इसलिए (विधवा होने पर) जब मातृत्वका सुयोग ही न रहा तब उसे लेकर और क्या होगा, मर्ती हो जाना ही उचित है। और फिर प्रचार किया जाने लगा—"जिस देशमें स्त्रियाँ हँसती-हँसती चितापर जाकर बैठ जाया करती थीं, और अपने स्वामीके चरण-कमलोंको अपनी गोदमें लेकर प्रफुल्लित वदनसे अपने-आपको भस्मसात कर दिया करती थीं!—" इत्यादि।

लेकिन यदि यह सच था, तो स्वामीकी मृत्युके बाद ही उनकी

विधवाको एक कटोरा भाँग और धतूरा पिलाकर नशेमें बदहोश क्यों कर दिया जाता था? जब वह श्मशानकी ओर जाती थी तब कभी तो हँसती थी, कभी रोती थी, और कभी रास्तेमें ही ज़मीनपर लेटकर सो जाना चाहती थी। यही उसकी हँसी थी और यही उसका सहमरणके लिए जाना था! इसके बाद चितापर बैठाकर कच्चे बाँसकी मचिया बनाकर दबा रक्खा जाता था, क्योंकि डर रहता था कि शायद सती होनेवाली स्त्री दाहकी यंत्रणा न सह सके। चितापर बहुत अधिक राल और घी डालकर इतना अधिक धुँआ कर दिया जाता था कि जिसमे उसकी यंत्रणा देखकर कोई डर न जाय, और दुनियाँ भरके इतने अधिक ढोल-ढक्के, करताल-शख आदि ज़ोर-ज़ोरसे बजाये जाते थे कि कोई उसका चिल्लाना, रोना-धोना, या अनुनय-विनय न सुनने पावे।

—नारीका मूल्य

सतीत्व तो सिर्फ़ देहमें ही सीमित नही है, वह मनसे भी तो होना चाहिए। मन-वचन-कायसे प्रेम बग़ैर हुए तो उसका ऊँचे स्तरपर पहुँचना सम्भव नहीं। आप क्या वास्तवमें यही समझते हैं कि मन्त्र पढकर ब्याह हो जानेसे कोई भी भारतीय स्त्री किसी भी भारतीय पुरुषको प्रेम कर सकती है? यह क्या तालाबका पानी है जो किसी भी पात्रमे भरकर मुँह बन्द कर देनेसे काम चल जायगा।

—अधिकार

सतीत्वको मैं भी तुच्छ नही कहता; किन्तु इसीको नारी-जीवनका चरम और परम श्रेय जाननेको भी मै कुसंस्कार समझता हूँ। कारण, मनुष्यका, मनुष्य होनेका जो स्वाभाविक और सच्चा दावा है, उसे चकमा देकर जिस किसीने जिस किसी चीज़को बड़ा करके खडा करनेकी चेष्टा की है, उसने उसे भी धोखा दिया है, और आप भी ठगा गया है।

—निबन्धावली—स्वराज्यकी साधनामें नारी

परिपूर्ण मनुष्यत्व सतीत्वकी अपेक्षा बड़ा है।........मैंने सती नारीको चोरी करते, जुआ खेलते, जाल करते और झूठी गवाही देते देखा है, और ठीक इससे उलटा देखना भी मुझे नसीब हुआ है।

—निबन्धावली–साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्व ठीक एक ही वस्तु नहीं है।

—निबन्धावली–साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

पति न्याय-अन्याय कुछ भी करें, उनके प्रेमकी उपेक्षा करनेकी स्पर्धा किसी देशकी स्त्रियोंमें नहीं है। मुझे तो मालूम होता है कि उस चीज़के खोनेसे मरना कहीं अच्छा—उसके खोये जानेके बाद भी (पत्नीका) जीते रहना सिर्फ विडम्बना है।

—दर्पचूर्ण

"मैं (एक निर्वासिता पत्नी) आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एकमात्र बेतके ज़ोरसे स्त्रीके समस्त अधिकारोंको छीन लेता है और उसे अँधेरी रातमें अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मंत्रोंके ज़ोरसे उसपर पत्नीके कर्तव्योंकी ज़िम्मेदारी बनी रहती है या नहीं?..... ......"

यह तो खूब मोटीसी बात है कि जहाँ अधिकार नहीं वहाँ कर्तव्य भी नहीं। उन्होंने भी तो मेरे ही साथ उन्हीं मंत्रोंका उच्चारण किया था, किन्तु वह एक निरर्थक बकवाद ही रहा जो उनकी प्रवृत्तिपर,—उनकी इच्छापर तो ज़रा-सी भी रोक नहीं लगा सका।... ..स्त्रीके नारी-जन्मकी क्या यही चरम सार्थकता है कि वह उसका प्रायश्चित्त करती हुई जीती हुई भी मृतकके समान बनी रहे?........ क्या मेरे पतित्वका कुछ भी अधिकार नहीं है, माता होनेका अधिकार नहीं है; समाज, संसार, आनन्द किसीपर भी मेरा कुछ अधिकार नहीं है? यदि कोई निर्दय, मिथ्यावादी, बदचलन पति बिना अपराधके अपनी स्त्रीको घरसे निकाल दे, तो क्या इसीलिए उसका समस्त नारीत्व व्यर्थ, लँगड़ा. पंगु हो जाना चाहिए?

—श्रीकान्त. पर्व २

हमलोग गृहस्थके घरकी स्त्रियाँ ठहरी, इसीलिए शारीरिक अच्छाई और बुराईपर उतना ध्यान नहीं देतीं। मर जानेपर कहतीं हैं कि गंगा-लाभ हुआ है; और जब जीती है तब कहती हैं कि अच्छी हैं।

—देवदास

(नव वधू, पतिके बाहर जाते समय)—"मुझे क्या करना होगा, बता जाओ।"

पति—"कुछ भी बता जाना नहीं होगा, आजसे तुम अपने-आप ही समझने लगोगी।"

—परिणीता

'भाण्डार !'—गृहिणीके राज्यकी वही तो राजधानी है।

—गृहदाह

यह सब तुम क्या ढूँढती-फिरती हो भाभी ? तुम क्या समझती हो कि बचपनके सब प्रेमोंका आखिरी नतीजा (अच्छा) यही होता है ? या आदमी ब्याह करने-करानेका मालिक है ? यह सिर्फ इसी जन्मका नहीं, भाभी, जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध है। मैं जिनकी चिरकालकी दासी हूँ उन्हींके हाथ भगवान्‌ने मुझे सौंप दिया है।

—गृहदाह

तुम मेहनतकी कह रही हो भाभी—जिस दिन पति-पुत्र और गृहस्थीके मारे नहाने-खानेकी भी फुरसत न मिलेगी, उस दिन समझोगी, कि स्त्री-जन्म सार्थक हुआ।

—गृहदाह

उसने स्वयं अपने पतिसे कहा है, "मैं तुमसे प्रेम नहीं करती" और उसी क्षण नारीकी सर्वोत्तम मर्यादा भी उसके लिए समाजसे धुल-पुछ कर साफ हो गई।

मेरी एक बात सुनो बहन, पतिकी इस दिशा (विवाह-पूर्व प्रेम-सम्बन्धो) को कभी किसी दिन अपनी बुद्धिके ज़ोरसे ज़बरदस्ती आविष्कार करनेकी कोशिश न करना। इसमे बल्कि ठगाना अच्छा; पर जीतनेसे कोई लाभ नहीं।

—गृहदाह

विवाह तुम लोगोके समाजमे (ब्राह्म समाज या पश्चिममे) एक सामाजिक विधान है। इसीसे उसके विषयमें अच्छे-बुरेका विचार हुआ करता है, उसके विधि-विधान युक्ति-तर्कोंसे बदल जाते है। परन्तु हम लोगो (हिन्दू) के लिए विवाह धर्म है। पतिको हम बचपनसे ही इसी रूपमें ग्रहण करती आई है। यह चीज़ तो बहन, समस्त विचार-तर्कोंसे परेकी चीज़ है।

—गृहदाह

धर्मके मतामत बदलते है, पर असल चीज़ कहाँ बदलती है बहन? इससे, इतने लडाई-झगडोके होते हुए भी वह मूल वस्तु आज भी समस्त जातियोकी एक ही बनी हुई है। पतिके दोष-गुणोका हमलोग (हिन्दू) विचार किया करती है, उनके सम्बन्धमे मतामत हमारे भी बदलते रहते है—हम भी तो आख़िर मनुष्य है। परन्तु पति हमारे लिए धर्म हैं, इसीसे वे नित्य है। जीवनमे भी नित्य है, मृत्युमें भी नित्य। उन्हे तो हम बदल नही सकतीं।

—गृहदाह

पतिको जो वास्तवमे धर्म समझकर, परलोककी वस्तु समझकर ग्रहण कर सकी है, उसके पैरोकी बेडी चाहे तोड दो और चाहे बँधी रहने दो, उसके सतीत्वकी परीक्षा अपने-आप ही हो गई, समझ लो।

—गृहदाह

पतिको जिस स्त्रीने हृदयसे धर्मके रूपमे विचारना नही सीखा,

दुनिया घूमकर मैंने बहुतेरी चीज़ोंकी थाह पाई है, पर नहीं पाई यदि किसीकी तो इस नर-नारीके प्रेमके तत्त्वकी। बहन; 'असम्भव' शब्द शायद इन्हींके कोषमें नहीं लिखा।

—अधिकार

हिन्दू वधूः—"मुझे आपने क्या समझा है, मैं नहीं जानती, परन्तु मेरी सास, मेरी जिठानी, मेरे जेठ, हमारे ठाकुर जी और अतिथिशाला, हमारे आत्मीय-स्वजनसमाज—इन सबसे अलग करके अपने पतिको मैं एक दिनके लिए भी नहीं पाना चाहती।

—विप्रदास

पतिके विरुद्ध कभी विद्रोहका स्वर मनमें नहीं लाना चाहिए। लेकिन पति भी मनुष्य है, और मनुष्यको भगवान्के रूपमें पूजा करना केवल निष्फल ही नहीं, इससे वह (स्त्री) अपनेको भी और पतिको भी छोटा बना देती है।

—पत्रावली-लीलारानी गंगोपाध्यायको

ब्याहके मंत्र कर्त्तव्य-बुद्धि दे सकते हैं, भक्ति दे सकते हैं, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकते हैं, किन्तु माधुर्य देनेकी शक्ति उनमें नहीं है।

—चरित्रहीन

• • ० विधवा

"मै हिन्दू विधवा हूँ। मुझे दीर्घजीवी होनेके लिए कहना मानो मुझे शाप देना है। हमलोगोका कोई शुभाकांक्षी कभी इस तरहका आर्शीर्वाद नही देता।"

—रमा

मै विधवा-विवाहकी अच्छाई-बुराईपर बहस नहीं कर रहा; परन्तु इस क्षेत्रमें तुम्हारा साराका सारा हिन्दू-समाज चिल्ला-चिल्लाकर मर जाय, तो भी मै यह नही मानूँगा कि यही व्यवस्था उस [विधवा] दुध-मुँही बच्चीके लिए चरम और श्रेय है। सारे जीवनको क्या तुमलोगोने खेलकी चीज़ समझ रखा है कि 'ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य' कहके चिल्लानेसे ही सारी दुनिया उसके लिए रात ही रातमे ऋषियोका तपोवन हो जायगी।

—गृहदाह

[सती-प्रथा बन्द हो गई तो क्या] हम यही बैठे-बैठे ही अपनी विधवाओको देवी बना डालेगे। इसके बाद शास्त्रोमेंसे बहुतसे पुराने श्लोक ढूँढकर निकाले गये, जिनका इतने दिनों तक कभी कोई व्यवहार नही हुआ था, और जो न जाने कहाँ पड़े हुए थे, और उन्ही श्लोकोंकी दुहाई देकर और सुनीतिकी पुकार मचाकर जितने प्रकारकी कठोरताओंकी कल्पना की जा सकती थी, वे सभी कठोरताएँ सद्य विधवाओंके सिरपर लादकर उन्हें नित्य थोडा-थोडा करके 'देवी' बनानेका काम शुरू कर दिया गया। वह आभूषण आदि न पहने, वह दिन-रातमें केवल एक बार खाये, वह हड्डियाँ तोड डालनेवाला परिश्रम करे, थानमेंसे फाडी हुई बिना किनारीकी धोती पहने,—क्योंकि वह देवी जो ठहरी! पुरुष चिल्ला-

चिल्लाकर कहते न थे कि, हमारी विधवाओंकी तरहकी देवियाँ भला और किस समाजमें हैं? फिर भी उन देवीको विवाहवाले घरमें या उनके मण्डपके पास नहीं जाने दिया जाता था। क्योंकि डर था कि कहीं एक देवीका मुँह देखकर और कोई देवी न हो जाय।

—शरत् बाबू

क्या कोई पुरुष यह बात माननेके लिए तैयार होगा कि वास्तवमें कुल-त्याग पति-युक्ता स्त्रियाँ ही करती हैं, और वह भी केवल पुरुषोंके दुराचार और उत्पीड़नके कारण।

—शरत् बाबू

विधवाके आजन्म संयम जीवनको क्या तुम विशुद्ध पवित्रताका भी सम्मान न दोगे?

संयम जहाँ अर्थहीन है वहाँ सिर्फ निष्फल आत्म-पीडन है !

—शेष प्रश्न

मैंने स्वयं लडकपनमे एक बार छः, सात सौ कुलत्यागिनी-बंगालिनो का इतिहास संग्रह किया था। बहुत समय, बहुत रुपये इसमे नष्ट हुए थे। लेकिन उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा भी मिली थी। जो कुल-त्याग करके आती है उनमें अस्सी प्रतिशत प्रायः सधवाएँ है, विधवाएँ बहुत ही कम है !

—पत्रावली—लीलारानी गंगोपाध्यायको

अति संयम भी एक प्रकारका असंयम है।

—शेष प्रश्न

हिन्दू विधवाके सामने अगर कोई मर जाता है, और उसके उँगली से छूनेसे भी वह ज़िन्दा हो सकता है, तो हिन्दू विधवाको यह भी नही करना चाहिए। क्योंकि वह विधवा है, और जो आदमी मर रहा है, पर-पुरुष है।

—पत्रावली—मणिलाल गंगो० को

विधवा होना ही नारी-जीवनकी चरम हानि और सधवा होना ही चरम सार्थकता है, इन दोनोमे कोई भी सत्य नही।

—पत्रावली—लीलारानी गंगो० को

मै विधवा हूँ, मेरी जानका भला क्या मूल्य है भाई ?

—चरित्रहीन



• • • प्रेम

बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है।

—श्रीकान्त, पर्व १

इस, प्रेमसे बढ़कर शक्ति, इस प्रेमसे बढ़कर शिक्षक संसारमें शायद ही कोई हो। ऐसी कोई बड़ी बात नहीं जिसे यह न कर सके।

—श्रीकान्त, पर्व २

(पति-परित्यक्ता एक-निष्ठ प्रेमके प्रतिदानके सम्बन्धमें) उनका प्यार तो आपकी दृष्टिसे ओझल नहीं है। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगड़ा बनाकर मैं 'सती'का 'खिताब' नहीं खरीदना चाहती।

—श्रीकान्त, पर्व २

न कुछ एक रात्रिके विवाह-अनुष्ठानको, जो कि पति-पत्नी दोनोंके ही निकट स्वप्नकी तरह मिथ्या हो गया है, ज़बर्दस्ती जीवनभर 'सत्य' कहकर खड़ा रखनेके लिए इतने बड़े प्रेमको क्या मैं बिल्कुल ही व्यर्थ कर दूँ? जिन विधाताने प्रेमकी यह देन दी है, वे क्या इसीसे खुश होंगे?

—श्रीकान्त, पर्व २

मैंने बहुत देखकर जान लिया है कि स्नेहकी गहराई समयकी स्वल्पतामें हरगिज नहीं नापी जा सकती।

—श्रीकान्त, पर्व ३

स्नेहको सिर्फ बाहरी घटनाओंको अगल-बगल रखकर सजाकर उससे हृदयोंका पानी नहीं नापा जा सकता।

—श्रीकान्त, पर्व ३

(भतीजा अत्यन्त प्यार करनेवाली नाईने) "ओर,—न मुझे क्या-

लातमें देगी ? दे न, देकर मज़ा देख न ! आपही रो-रोकर मर मिटेगी,—मेरा क्या होगा ?

—मुकद्दमेका नतीजा

जिसका अपना मन दूसरेके हाथ चला जाता है, संसारमें उससे बढ़कर असहाय, निरुपाय शायद और कोई भी नहीं ।

—षोडशी

प्रेम करना और बात है और रूपका मोह और बात । इन दोनोंमें बहुत अधिक गड़बड़ी होती है और पुरुष ही अधिक गड़बड़ी करते हैं । रूपका मोह तुमलोगों (पुरुषों) की अपेक्षा हमलोगों (स्त्रियों) में बहुत कम होता है; इसीलिए तुम लोगोंकी तरह हम उन्मत्त नहीं हो जातीं ।

—देवदास

जो यथार्थ प्रेम करता है वह सहन किया करता है ।

—देवदास

इससे बढ़कर आफ़तकी बात और कोई नहीं हो सकती कि आदमी जिसे प्यार न करता हो, वही ज़बरदस्ती प्यारकी कहानी सुनाने बैठ जाय ।

—देवदास

प्रेम-पात्रका निशानतक पुंछ गया है (पति या पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर) उन्हें किसी दिन प्रेम किया था, मनमें सिर्फ यह घटना मात्र रह गई है । मनुष्य नहीं है, उसकी केवल स्मृति है । उसीको अहोरात्रि मनमें पालते रहकर वर्तमानकी अपेक्षा अतीतको ही ध्रुव जानकर जीवन बितानेमें कौन-सा बड़ा आदर्श है, मेरी तो समझमें नहीं आता ।

—शेष प्रश्न

"नहीं ! यह तो कविकी उपमा है । कोई युक्ति नहीं और सत्य भी नहीं । मालूम नहीं, किस आदिम कालमें कुहरेकी सृष्टि हुई थी, पर आज भी वह उसी तरह मौजूद है । सूर्यको उसने बार-बार ढका हैं और बार-बार ढकता रहेगा । मालूम नहीं सूर्य ध्रुव है या नहीं, पर कुहरा भी असत्य प्रमाणित नहीं हुआ । दोनों ही नश्वर है, और हो सकता है कि दोनों ही नित्य हों । इसी तरह, भले ही (रूपका) मोह क्षणिक हो, पर क्षण भी तो असत्य नहीं । क्षणभरका सत्य लेकर ही बार-बार वह वापस आया करता है । मालती फूलकी आयु सूर्यमुखीकी तरह लम्बी नहीं, पर उसे असत्य कहकर कौन उडा सकता है ? आयुष्य कालकी लम्बाई ही क्या जीवनका इतना बडा सत्य है ?

—शेष प्रश्न

मनके मेलको मैं तुच्छ नहीं समझता, मगर उसीको अद्वितीय कहकर उच्च स्वरसे घोषित करना आजकल एक ऊँचे ढंगका फैशन हो गया है । इससे महत्ता और उदारता दोनों हो प्रकट होती है, परन्तु सत्य नहीं प्रकट होता । यह कहना ग़लत है कि संसारमें एक सिर्फ मन ही है और उसके बाहर जो कुछ है, सब छाया है ।

—शेष प्रश्न

श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, विश्वास—इन्हें कड़ाई करके नहीं पाया जा सकता, बड़े दुःखसे और बहुत देरसे ये दिखाई देते है । मगर जब दिखाई देते है, तब रूप, यौवनका प्रश्न जाने कहाँ मुँह छिपाकर दुबक जाता है !

—शेष प्रश्न

प्रेमकी पवित्रताका इतिहास ही मनुष्यकी सभ्यताका इतिहास है, उसका जीवन है । यही उसके महान् होनेका धारावाहिक वर्णन है ।

—शेष प्रश्न

आयुकी दीर्घताको ही जो सत्य समझकर जकड़े रहना चाहते हैं, मैं उनमेंसे नहीं हूँ। जो लोग, इस डरसे कि असली फूल जल्दीसे सूख जाते हैं, देरतक रहनेवाले नक़ली फूलोंका गुच्छा बनाते और फूलदानोंमें सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मनका मेल नहीं खाता। × × × किसी भी आनन्दमें स्थायित्व नहीं है। स्थायी हैं सिर्फ उस आनन्दके क्षणस्थायी दिन और वे दिन ही तो मानव-जीवनके चरम संचय हैं। उस आनन्दको बाँधने चले कि वह मरा। इसीसे ब्याहमें स्थायित्व तो है, पर उसका आनन्द नहीं, दुःसह स्थायित्वकी मोटी रस्सी गलेमें बाँधकर वह आनन्द आत्म-हत्या करके मर मिटता है।

—शेष प्रश्न

प्रेम क्या नहीं कर सकता? रूप, यौवन, सम्मान, सम्पदा—यह सब कुछ नहीं, क्षमा ही उसकी वास्तविक आत्मा है। जहाँ क्षमा नहीं वहाँ प्रेम सिर्फ विडम्बना है, वहाँपर रूप-यौवनका विचार-वितर्क उठता है और वहाँपर आता है आत्मसम्मान जानका टग ऑफ वार (रस्सा-कशी)!

—शेष प्रश्न

प्रेमकी वास्तविकताको लेकर मर्दोंका दल जब अपनी बड़ाई किया करता है, तब सोचती हूँ कि हमारी जाति उनसे अलग है। तुम लोगोंके और हम लोगोंके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुम लोग चाहते हो विस्तार और हम लोग चाहती हैं गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती हैं शान्ति। × × × भो जी—प्रेमकी दर्ांसे बड़ी क्षति, स्त्रियोंके लिए, निर्भरताकी अपेक्षा और कुछ नहीं है। पर यही चीज तुम लोगों (पुरुषों) में कोई कभी नहीं पाती।

—श्रीकान्त, पर्व ४

समाजमे जिसे गौरव प्रदान नहीं किया जा सकता, उसे केवल प्रेमके द्वारा सुखी नही किया जा सकता। मर्यादाहीन प्रेमका भार शिथिल होते ही दुस्सह हो जाता है।

—पत्रावली-हरिदास शास्त्री को

यथार्थ प्यार करनेमे स्त्रियोंकी शक्ति और साहस पुरुषसे कही अधिक है। वे कुछ नहीं मानती। पुरुष जहाँ भय-विह्वल हो जाते है, स्त्रियाँ वहाँ स्पष्ट बाते उच्च स्वरसे घोषित करनेमे दुविधा नही करती।

—पत्रावली-हरिदास शास्त्री को

कहा जाता है कि सच्चे प्यारके लिए संसारमें दुःख भोगना पड़ता है। कोई न करे तो समाजके बेतुके अन्यायका प्रतिकार कैसे होगा? समाजके विरुद्ध जाना और धर्मके विरुद्ध जाना, एक वस्तु नही है। इस बातको लोग भूल जाते है।

—पत्रावली–हरिदास शास्त्री को

जिसे परेशान करनेके लिए कोई नही है, उससे बढकर अभागी लड़की संसारमे दूसरी नही है।

—आगामी काल

जिसे हम प्यार करते है, वह अगर हमे प्यार न करे, यहाँ तक कि घृणा भी अगर करे; तो हम उसे शायद सह सकते हैं; किन्तु जिसके बारेमें यह विश्वास करते है कि उसका प्यार हम प्राप्त कर चुके है, उसीके विषयमें यदि अपनी भूल हमे मालूम हो जाय तो वह बडे कष्टकी स्थिति होती है। पहली अवस्थामे तो व्यथा ही होती है परन्तु दूसरीमें अपना अपमान भी जान पडता है।

—चरित्रहीन

प्रणयकी अन्तर्दृष्टिको सहजमे धोखा नही दिया जा सकता।

—चरित्रहीन

क्या यह सच है कि प्रेम अन्धा है ?

यदि हाँ तो देखो, अंधा आदमी गढ़ेमें गिर जाता है तो लोग दौड़कर उसे निकाल लेते हैं—उसके लिए दुःख करते हैं। लेकिन प्रेमसे अन्धा होकर वही आदमी जब नीचे गिर जाता है, तब कोई हाथ पकड़कर उसे उठानेको नहीं दौड़ आता—यह क्यों ? जिस सत्यका मनुष्य आप ही प्रचार करता है, प्रयोजनके समय वह उस सत्यकी कोई मर्यादा ही नहीं रखता।

—चरित्रहीन

आजकलका यही सामाजिक आदमी एक दिन ऐसा था कि अपनी प्रवृत्तिके सिवा और किसीके भी शासनको नहीं मानता था। रूपके आकर्षणसे, उस समय, उसकी वह दुर्दान्त प्रवृत्तिकी ताड़ना ही था उसका प्रेम। इसी प्रवृत्तिको शौक़ीन पोशाक पहनाकर, सजाकर खड़ा करनेसे ही उपन्यासका ख़ालिस प्रेम तैयार होता है।

—चरित्रहीन

"मैं किसी तरह यह नहीं मान सकता कि पवित्र प्रेम स्वर्गीय नहीं है।"

"तुम्हारे मानने न माननेपर तो इसका दारोमदार है नहीं। हम लोगोंकी यह देह भी तो एक दिन नष्ट होनेवाली क्षणभंगुर है—एक दम पार्थिव चीज़ है। किन्तु इसमें तो मैं कोई दुःखका कारण नहीं देखती। बच्चा धरतीपर आनेके बादसे जब तक अपनी इस जड़ देहमें सृष्टि करनेकी शक्तिका संचय नहीं कर पाता तब तक प्रेमका सिंहद्वार उसके सामने बंद ही रहता है। वह उस सिंहद्वारको प्रवृत्तिकी ताड़नासे ही खोलता है। इस अवस्थाके पहले वह अपने माता-पिताको, भाई-बहनको प्यार करता है, बन्धु-बान्धवों व इष्ट-मित्रोंको भी प्यार करता है, किन्तु जब तक उसका पंचभौतिक शरीर बड़ा नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारे

स्वर्गीय प्रेमकी कोई खबर रखनेका अधिकार उसे नहीं होता। पृथ्वीमें आकर्षण शक्ति अवश्य है किन्तु पका हुआ फल ही उसके आगे आत्म-समर्पण करता है, कच्चा फल नही। सारे विश्वमे अविच्छिन्न सृष्टिका खेल, रूपका खेल चल रहा है। यह स्वर्गीय नहीं है, इसलिए इतना दुःख करने या लज्जित होनेकी बात तो मै नही देखती।

—चरित्रहीन

असावधानीके कारण वृक्षके ऊपरसे गिरकर हाथ-पैर तोड लेनेका अपराध पृथ्वीकी माध्याकर्षण शक्तिके ऊपर मढ़ना और प्रेमको कुत्सित घृणित कहना एक ही बात है। इसी तरह ससारमें एकका अपराध दूसरेके सिर थोपा जाता है।

—चरित्रहीन

जीवका प्रत्येक अणु-परमाणु, प्रत्येक रक्तकण, अपनेको और भी उत्कृष्ट रूपमे बदलनेका, विकसित करनेका लोभ किसी तरह दबा नही सकता। जिस देहमें उसका जन्म है, उस देहमे जब उसकी परिणतिकी निर्दिष्ट सीमा समाप्त हो जाती है, तब वही उसका यौवन है। केवल तभी वह अन्य देहके संयोगसे अधिकतर सार्थक होनेके लिए अपनी प्रत्येक शिरा-उपशिरामें—नस-नसमे—जिस तांडवकी सृष्टि करता है, उसीको पडितोंके नीतिशास्त्रमे पाशविक कहकर ग्लानि प्रकट की जाती है। इसका तात्पर्य न समझ पाकर ही हतबुद्धि भिन्न पंडितोंका दल इसे घृणित कहकर, वीभत्स कहकर, सन्तुष्ट होता है। लेकिन इतना बडा आकर्षण किसी तरह ऐसा हेय, ऐसी छोटी चीज़ नही हो सकता। यह सत्य है, सूर्यके प्रकाशकी तरह सत्य है, ब्रह्माण्डके आकर्षणकी तरह सत्य है। कोई भी प्रेम कभी घृणाकी चीज़ नही हो सकता।

—चरित्रहीन

जिसे हमने प्यार किया है, अपने किसी श्रेष्ठ स्थानमें उसकी स्थापना करेंगे—इस बातको लेकर किसीके साथ झगड़ा खड़ा नहीं होता। किन्तु जो समाजविरुद्ध है उसके लिए सुईकी नोक-भर जगह भी छोड़ देनेके लिए वह किस प्रलोभनसे राज़ी करेगा।

—चरित्रहीन

एक आदमी दूसरेके मनकी बात जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यारसे—उम्र और बुद्धिमें नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व १

• • • मानव

विश्वास रखो कि सभीके शरीरमे भगवान् निवास करते है और जब तक मृत्यु नही हो जाती, तब तक वे उसे छोडकर नही जाते ।

—अन्धकारमे आलोक

यह ठीक है कि सभी मन्दिरोमे देवताकी पूजा नहीं होती, लेकिन फिर भी उनमे रहनेवाले देवता ही होते है । उन्हें देखकर सिर न नवा सको, किन्तु ठुकराकर भी नही जा सकते ।

—अन्धकारमे आलोक

स्वभावके विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिल्कुल उडाया नही जा सकता । नारी-शरीरपर सैकडो अत्याचार किये जा सकते है पर नारीत्वको तो अस्वीकार नही किया जा सकता ।

—अन्धकारमे आलोक

मुझे परीक्षा करके देखना होगा कि सचमुच क्या मनुष्य ही मनुष्यो में बडा है या उसके जन्मका हिसाब ही संसारमें बडा है ।

—श्रीकान्त, पर्व २

मनुष्यमें जो पशु है, सिर्फ उसीके अन्यायसे और उसीकी समस्त भूल-भ्रान्तिसे मनुष्यका विचार करूँ ? और जिस देवताने समस्त दुःख, सम्पूर्ण व्यथा और समस्त अपमानोको चुपचाप सहन और वहन करके भी आज सस्मित मुखसे आत्मप्रकाश किया है, उसे बिठानेके लिए कही आसन भी न बिछाऊँ ! यह क्या मनुष्यके प्रति सच्चा न्याय होगा ?

—श्रीकान्त, पर्व ३

वास्तवमें मनुष्य होकर पैदा होनेके सम्मान-ज्ञानको ही आदमी होना कहते हैं—मृत्युके भयसे मुक्त होनेको ही आदमी होना कहते हैं।

—अधिकार

इससे भी न जाने कितने बड़े दुःख और कष्ट भगवान् मनुष्यको सहने देकर उसे सच्चा मनुष्य बना देते हैं।

—चरित्रहीन

मैंने समझ लिया है कि मनुष्य अन्त तक किसी तरह भी अपना पूरा-पूरा परिचय नहीं पाता। वह जो नहीं है, वही अपनेको समझ बैठता है और बाहर प्रचार करके केवल विडम्बनाकी सृष्टि करता है, और जो दण्ड इसका भोगना पड़ता है, वह भी बिल्कुल हल्का नहीं होता।

—श्रीकान्त, पर्व १

••• नूतन और पुरातन

"तब कोई चीज़ पैदा होती थी तो पास-पड़ोसी सभीको उसमें से कुछ-न-कुछ मिला करता था, और अब तो अकेला 'थोड' और 'मोचा' तक—आँगन में लगे हुए शाककी दो पत्तियाँ भी, कोई किसीको नहीं देना चाहता। कहते हैं रहने दो, साढ़े आठ बजेकी गाड़ीसे खरीद-दारोंके हाथ बेच देनेसे दो पैसे तो भी आ जायेंगे। कहाँ तक दुःखड़ा रोया जाय, पैसे बनानेके नशेमें स्त्री और पुरुष सबके सब बिल्कुल ही नीच हो गये हैं।"

—श्रीकान्त, पर्व ३

वे (आधुनिक) तो सिर्फ सोलह आनेके बदले चौसठ पैसे गिन लेना जानते हैं,—सिर्फ देन-लेन की बात समझते हैं, और उन्होंने सीख रखा है सिर्फ भोगको ही मानव जीवनका एक मात्र धर्म मानना। इसीसे तो उनके दुनिया भरके सग्रह और संचयके व्यसनने ससारके समस्त-कल्याण को ढक रखा है।

—श्रीकान्त, पर्व ३

इस क्षणिक परिवर्तनशील संसारमें सत्योपलब्धि नामकी कोई नित्य वस्तु है ही नहीं। उसके जन्म है, मरण है,—युग-युगमें मनुष्यकी आवश्यकताके अनुसार सत्यको नया रूप धारण करके आना पड़ता है। यह विश्वास भ्रान्त है—यह धारणा कुसंस्कार है कि अतीतमें जो सत्य था उसको वर्तमानमें भी सत्य स्वीकार करना ही पड़ेगा।

—अधिकार

आधुनिक समाज—यह हम लोगोंके बड़े सर्किलका पारिवारिक बन्धन है। उसका 'कोड' ही अलग है, और चेहरा ही जुदा है। उसकी जड़ रस नहीं खींचती, पत्तों का रंग हरा नहीं होने पाता कि पिलाई आने लगती है।

—अनुराधा

उम्रके साथ-साथ एक दिन सभी चीज़ें प्राचीन, जीर्ण और नाकाम हो जायेंगी; और तब वे त्याज्य ही ठहरेंगी। प्रतिदिन मनुष्य तो बढ़ता जाय पर उसके पूर्वपुरुषोंकी प्रतिष्ठित हजारों वर्षोंकी रीति-नीतियाँ जैसी-की-तैसी एक ही जगह अचल होकर पड़ी रहें—ऐसा हो तो अच्छा ही हो, मगर ऐसा होता नहीं। मुश्किल तो यह है कि सिर्फ वर्षोंकी संख्यासे ही किसी संस्कारकी प्राचीनता निरूपित नहीं की जा सकती।

—अधिकार

पुरानेके मानी ही पवित्र नहीं हो जाता, आदमी सत्तर वर्षका पुराना हो जाय तो वह दस सालके बच्चेकी अपेक्षा पवित्र नहीं हो जाता।

—अधिकार

वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, मगर अच्छी होती है अपने गुणसे। सिर्फ प्राचीन होनेसे ही वह पूज्य नहीं हो जाती। जो बर्बर जाति किसी ज़मानेमें अपने बूढ़े माँ-बापको जिन्दा गाड़ देती थी, वह आज भी अगर उस प्राचीन अनुष्ठानकी दुहाई देकर मनुष्यके कर्त्तव्यका निर्देश करना चाहे तो?

—शेष प्रश्न

बुरा तो अच्छेका दुश्मन नहीं हुआ करता, अच्छे का दुश्मन तो वह है जो उससे और भी अच्छा है। वह 'और भी अच्छा' जिस दिन अच्छेके सामने उपस्थित होकर प्रश्न का जवाब चाहता है उस दिन उसीके हाथमें राजदण्ड सौंपकर उसे अलग हो जाना पड़ता है।

—शेष प्रश्न

जगत्के आदिम युगमे एक दिन विराट् अस्थि, विराट् देह और विराट् क्षुधा वाले एक विराट् जीवकी सृष्टि हुई थी, उसी देह और क्षुधासे वह ससारकी जय करता फिरा था, और उस दिन वे थे उसके सत्य उपादान। किन्तु, फिर एक दिन ऐसा आया कि उसी देह और उसी क्षुधाने उसकी मृत्यु ला दी। एक दिनके सत्य उपादानोंने दूसरे दिनके मिथ्या उपादान बनकर उसे संसारसे निश्चिह्न कर दिया।

—शेष प्रश्न

पश्चिमके ज्ञान-विज्ञान और सभ्यताके सामने भारतवर्षको आज अगर नीचा देखना पडे तो उसके दम्भको चोट ज़रूर पहुँचेगी, किन्तु यह मै निश्चयसे कह सकती हूँ कि उससे उसके कल्याणको चोट नही पहुँचेगी।

—शेष प्रश्न

(उन्होने) सोचा था कि दुनियाकी उमरसे दो हजार वर्ष पीछे डालनेसे ही परम लाभ अपने-आप आ पहुँचेगा। योरोपमे एक दिन ऐसे ही झूठे लाभ की स्कीम बाँधी थी प्यूरिटनोंके एक दलने। सोचा था कि भागकर अमेरिका चले जायेगे और पिछली सत्रह शताब्दियाँ मिटा-कर बिना किसी झंझटके आनन्दके साथ बाइबिलका सतयुग क़ायम कर लेंगे। किन्तु उनके लाभका हिसाब आज सबको मालूम हो गया है। पिछले ज़मानेके दर्शनशास्त्रसे जब वर्त्तमान विधि-विधानोंका समर्थन किया जाने लगता है, तभी उन विधि-विधानोंके वास्तवमे टूटनेका दिन आ जाता है।

—शेष प्रश्न

दौडकर चलना ही प्रगति नही है।

—जागरण

सभ्यता क्या है? यह तो पूरी राक्षसी है! जो सभ्यता ग़रीबोंके मुँहका कौर—जन-साधारणका जीवन, मुट्ठीमें करके उन्हें मरनेको लाचार बना दे वह राक्षसी नहीं तो और क्या कहलायेगी।

—जागरण

उपलब्ध वस्तु असल वस्तुसे भी किसी तरह कई गुनी अधिक होकर उसे पार कर जाती, यह बात, यदि इन जैसे-लोगों (आधुनिक फैशनेबुल) के सम्पर्कमें न आया जाय तो, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकती।

—श्रीकान्त, पर्व १

उनके यहाँ (आधुनिक अति सभ्य समाज) सिर्फ गाडी-घोडे, साड़ी और झूठे प्यारके क़िस्से हैं। मैं नहीं जानती कि कहाँ नैनीताल है और कहाँ मंसूरीका होटल, लेकिन उनकी बातोंमें वहाँ के बारेमें कैसे-कैसे गन्दे इशारे रहते हैं—सुनते-सुनते तबीयत होती है कि कहीं भाग जाया जाय।

—विप्रदास

उन लोगों (आधुनिक अति सभ्य समाज) के न तो शान्ति है और न धर्म-कर्म की कोई बला। कुछ भी विश्वास नहीं करते, सिर्फ बहस करते हैं। अखबार पढ़ा करते हैं, इससे जानते बहुत हैं। × × × मगर उन लोगोंको थकावट नहीं आती, बकते-झकते सबके सब मानो उन्मत्त हो उठते हैं।

—विप्रदास

बस बस गन्दगी ढकी रहनेसे ही हमारा (आधुनिक समाजका) काम चल जाता है—इससे अधिक हम नहीं चाहते। वह चीज हमारी आँखोंसे छिपी रहे, बस हम लोग खुश रहेंगे।

—नव विधान

● ● ● नगर और ग्राम

हम लोग (ग्रामीण) अशिक्षित और दरिद्र है। हम लोग अपने मुँहसे अपना अभिमान प्रकट नही कर सकते। तुम लोग हमे छोटा आदमी कहकर पुकारते हो और हम चुपचाप स्वीकार भी कर लेते है। पर हमारा अन्तर्यामी स्वीकार नही करता। वह तुम लोगो (नगर-वासियो) की अच्छी बातोसे भी टससे मस नही होता।

—पण्डितजी

"तुम लोगो (नगरवासियो) को अपना आत्मीय और शुभाकांक्षी समझनेमे हमे डर लगता है। तुम देखते नही, हम लोगोमे ऊँट वैद्य और पोगा पंडित ही पूजा-प्रतिष्ठा पाते है, पर तुम्हारे जैसे बड़े-बडे प्रोफ़ेसरो और डाक्टरोकी भी यहाँ कुछ नही चलती। हम लोगोके हृदय मे भी देवता निवास करते है, तुम लोगोकी यह अश्रद्धाकी करुणा, यह ऊपर बैठकर नीचे भिक्षा देना, उन देवताओको चोट पहुँचाता है, वे मुँह फेर लेते है।"

—पण्डितजी

तुम लोगो (नागरिको) के सम्पर्कमे रहकर लिखना-पढना सीखनेसे किसानका लडका जब बाबू बन जाता है, तब वह अपने अशिक्षित बाप-दादाको नही मानता, श्रद्धा नही करता।

—पण्डितजी

केवल इच्छा और हृदय होनेसे ही दूसरोका भला अथवा देशका कार्य नही किया जा सकता। तुम जिसका भला करना चाहते हो, उसके साथ रहने का कष्ट भी तुम्हे सहन करना पडेगा।

—पण्डितजी

ग्रामीणः—ये पढ़े-लिखे और निरक्षर होनेपर भी अशिक्षित नहीं हैं। बहुत युगोंकी प्राचीन सभ्यता आज भी इनके समाजकी नसोंमें मिली हुई है। नीतिकी मोटी-मोटी बातें ये लोग जानते हैं। किसी धर्मके विरुद्ध इनका द्वेष-भाव नहीं है; कारण संसारके सभी धर्म मूलतः एक ही हैं और तैंतीस करोड़ देवताओंको अमान्य न करके भी एकमात्र ईश्वरको माना जा सकता है, इस बातका इन्हें ज्ञान है और अन्य किसी से भी कम नहीं है। हिन्दुओंका भगवान् और मुसलमानोंका खुदा एक ही वस्तु है, यह सत्य भी इनमे छिपा नहीं।

—गृहदाह

ग्रामीणः—ये लोग न तो अम्लरोगी निष्कर्मा जमींदार हैं, और न बहुत भारसे दबे हुए, कन्याके दहेजकी फिक्रसे ग्रस्त बंगाली गृहस्थ। इस लिए सोना जानते हैं। दिनभर घोर परिश्रम करनेके उपरान्त रातको ज्यों ही उन्होंने चारपाई ग्रहण की कि फिर; घरमें आग लगाये बग़ैर, सिर्फ़ चिल्लाकर या दरवाज़ा खटखटाकर उन्हें जगा दूँगा,—ऐसी प्रतिज्ञा यदि स्वयं सत्यवादी अर्जुन भी, जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाके बदले कर बैठते तो, यह बात क़सम खाकर कही जा सकती है, कि उन्हें भी मिथ्या प्रतिज्ञाके पापसे दग्ध होकर मर जाना पड़ता।

—श्रीकान्त, पर्व १

"असलमें दुःख भोगता कौन है भइया? मन ही तो? मगर यह बला क्या हम लोगोंने बाकी छोड़ी है इनमें (दरिद्र ग्रामीण)?—बहुत दिनोंसे लगातार सिकंजेमें दबा-दबाकर बिल्कुल निचोड़ लिया है बेचारों का मन। इससे ज्यादा चाहनेको अब ये खुद ही अनुचित स्पर्द्धा समझते हैं। वाह रे वाह! हमारे बाप-दादोंने भी सोच-विचार कर कैसी उमदा मशीन (कर्मवाद) ईजाद की है, क्या कहने?

—श्रीकान्त, पर्व १

नगर—मुँह सूख जानेपर कोई देखता नहीं; मुँह भारी होनेपर भी कोई लक्ष्य नहीं करता। यहाँ आप ही अपने-आपको देखना पड़ता है। यहाँ भिक्षा भी मिल जाती है, करुणाके लिए भी स्थान है, और आश्रय भी मिल जाता है। लेकिन अपना प्रयत्न चाहिए। यहाँ स्वयं अपनी इच्छासे कोई तुम्हारे बीचमें न आ पड़ेगा।

—बड़ी बहन



● ● ● जीवन-दर्शन

ऐसा विवेक कोई माने नहीं रखता। झूठे विवेककी जर्जर पैरोंमें डालकर अपनेको पंगु बना डालनेका हिमायती मैं नहीं हूँ। हमेशा दुःख भोगते चलना ही तो जीवन-धारणका उद्देश्य नहीं है।

—शेष प्रश्न

बिना किसी अपराधके मैं ही भला दुःख क्यों सहता रहूँ? ऐसा विश्वास मेरा नहीं है कि एकका दुःख और किसीके सरपर लाद देनेसे न्याय होता है।

—शेष प्रश्न

बहुत दिनोंके बद्धमूल संस्कारपर आघात लगनेसे आदमी सहसा सह नहीं सकता। आपने सच ही कहा है, हमारे निकट यह बात (तलाक या विवाह-विच्छेद) बहुत ही स्वाभाविक है; क्योंकि हमारे शरीर और मनमें यौवन परिपूर्ण है, हमारे मनमें प्राण है। जिस दिन जानूँगी कि आवश्यकता होनेपर भी उसमें परिवर्तनकी कोई शक्ति बाकी नहीं रही उस दिन समझ लूँगी कि उसका खातमा हो चुका है,—वह मर चुका है।

—शेष प्रश्न

अनुकरण चीज़ अगर सिर्फ बाहरकी नकल हो तो वह धोखा है, अनुकरण है ही नहीं; क्योंकि तब वह आकृतिसे मेल खाते हुए भी प्रकृतिसे नहीं मिलती। मगर भीतर-बाहरसे वह अगर एक-सी हो तो 'अनुकरण' होनेके कारण लज्जित होनेकी उसमें कोई बात नहीं।

—शेष प्रश्न

कोई कोई आदमी होते हैं जो बूढ़ा मन लिये ही पैदा होते है। उस बूढ़ेके शासनके नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन हमेशा लज्जासे सिर नीचा किये रहता है। बूढ़ा मन खुश होकर कहता है, अहा! यह तो अच्छा है, कोई हंगामा नहीं, कोई उन्माद नहीं,—यही तो शान्ति है, यह तो मनुष्यके लिए चरम तत्त्वकी बात है। ऊँचे स्वरसे उसकी ख्याति का बाजा बजता है, पर इस बातको वह जान नहीं पाता कि यह उसके जीवनका जय-वाद्य नहीं, आनन्द-लोकके विसर्जनका बाजा है।

—शेष प्रश्न

मनका बुढापा मै उसीको कहती हूँ, जो अपने सामनेकी ओर नहीं देख सकता; जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्यकी समस्त आशाओ को जलांजलि देकर सिर्फ अतीतके अन्दर ही ज़िन्दा रहना चाहता है। वर्तमान उसकी दृष्टिमें लुप्त है, अनावश्यक है, और भविष्य अर्थहीन। अतीत ही उसके लिए सब कुछ है। उसीको भुना-भुनाकर गुज़र करके जीवनके बाकी दिन बिता देना चाहता है।

—शेष प्रश्न

मै मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊँ उसीको सच्चा समझकर मान सकूँ। दुःखका दाह मेरे बीते हुए सुखकी ओस-बूँदोंको सुखा न डाले। एक दिनका आनन्द दूसरे दिनके निरानन्दके आगे शरमाये नहीं।

—शेष प्रश्न

इस जीवनमे सुख-दुःख कोई भी सत्य नहीं, सत्य है सिर्फ उनके चंचल क्षण, सत्य है सिर्फ उनके चले जानेका छन्द-मात्र।

—शेष प्रश्न

"इस जीवनमें कभी किसी भी कारण झूठी चिन्ता, झूठा अभिमान, झूठी बातका सहारा मुझे न लेना पड़े।"

—शेष प्रश्न

भारतके वैशिष्ट्य और योरोपके वैशिष्ट्यमें बड़ा भारी भेद है, परन्तु किसी देशके किसी वैशिष्ट्यके लिए मनुष्य नहीं हैं, बल्कि मनुष्यके लिए ही उस वैशिष्ट्यका आदर है। असल बात विचारनेकी यह है कि वर्तमान समयमें वह वैशिष्ट्य उसके लिए कल्याणकर है या नहीं। इसके सिवा और सब बातें अन्ध-मोह हैं।

—शेष प्रश्न

सिर्फ़ इसीलिए कि किसी एक जातिकी कोई विशेषता बहुत दिनोंसे चली आ रही है, क्या उस देशके मनुष्योंका अपने कल्याण-अकल्याणका ख्याल किये बग़ैर उसी साँचेमें हमेशा ढलते रहना होगा? इसके क्या मानी? मनुष्यसे बढ़कर मनुष्यकी विशेषता नहीं हो सकती, और इस बातको जब हम भूल जाते हैं तब विशेषता भी जाती रहती है और मनुष्यको भी हम खो बैठते हैं। यही पर तो वास्तविक लज्जा है।

—शेष प्रश्न

तब (अपनी भारतीय विशिष्टता खो देनेपर) मुनि-ऋषियोंके वंश-धरोंके रूपमें हम भले ही न पहचाने जाँय, पर मनुष्यके रूपमें तो हमें पहचाना ही जायगा और जिसे आप ईश्वर कहा करते हैं, वह भी पहचान लेगा, उससे भी ग़लती न होगी।

—शेष प्रश्न

अन्य सभी संयमोंकी तरह यौन-संयम भी सत्य है, मगर वह गौण सत्य है। धूम-धाम या समारोहके साथ उसे जीवनका मुख्य सत्य बना देनेसे वह भी एक तरहका असंयम हो जाता है। उसका दण्ड भी है। आत्म-निग्रहके उग्र दम्भसे आध्यात्मिकता क्षीण होने लगती है।

—शेष प्रश्न

तमाम बड़ी चीज़ें आदमीके हाहाकारमेंसे ही पैदा होती हैं।

—शेष प्रश्न

आश्रमों परः—बच्चोंसे इतने आडम्बरके साथ इस तरहकी निष्फल दरिद्रताका आचरण करानेका नाम क्या आदमी बनाना है? इन्हें (बच्चों, स्नातकोंको) आदमी बनाना हो तो साधारण और स्वाभाविक मार्गसे बनाइये। झूठे दुःखका बोझ लादकर असमयमे ही इन्हे बौना या कुबड़ा न बना डालिये।

—शेष प्रश्न

आश्रम और गुरुकुल—संसार-त्याग और वैराग्य-साधन हमारा लक्ष्य नही। हमारी साधना है संसारका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौन्दर्य, सम्पूर्ण जीवन लेकर जीवित रहना। मगर उसकी शिक्षा क्या यही है। बदनपर कपडे नही, पाँवोंमे जूते नही, फटे-पुराने कपडे पहन रखे हैं, रूखे बाल हैं, एक छाक अधपेट खाकर जो लड़के अस्वीकारके बीच बढ रहे हैं, प्राप्तिके आनन्दका जिनके भीतर चिह्न तक नही रहा है, देशकी लक्ष्मी क्या उन्हीके हाथ अपने भाण्डारकी चाबी सौंप देगी? संसारकी तरफ एकबार मुँह उठाकर देखिये तो सही। जिन्हे बहुत मिला है, उन्होने ही आसानीसे दिया है। उन लोगोंको ऐसी अकिंचनताका स्कूल खोलकर त्यागका ग्रेजुएट नही बनाया गया था।

—शेष प्रश्न

बहुत ज़्यादा मज़बूत बनानेके लोभसे बिल्कुल ठोस और निश्छिद्र मकान बनानेकी कोशिश मत करो। उससे मुर्देकी क़ब्र भले ही बन जाय, पर मनुष्यका शयनागार नही बन सकता।

—शेष प्रश्न

सिर्फ भोगको जीवनकी सबसे बडी चीज समझकर संसारमें कोई भी जाति बडी नही हो सकती। मुसलमानोंने जिस दिन ऐसी ग़लती की, उस दिन उनका त्याग भी गया और भोग भी छूट गया।

—शेष प्रश्न

शास्त्रका विचार व्यर्थ होकर दरवाजेपर पड़ा रह जाता है,—उसे छू तक नहीं पाता।"

"सो हो सकता है, मगर है तो आखिरकार वह शत्रु ही, हमें उसे जीतना तो चाहिए ही।"

"मगर शत्रु कहकर गाली देनेसे ही तो वह छोटा न हो जायगा। प्रकृतिके पक्के-लिखे पट्टेके अनुसार वह दखलदार है,—उसके किस स्वत्वको कब कौन सिर्फ़ विद्रोह करके ही उड़ा सका है? फिर भी मज़ा यह है कि ऐसी ही युक्तियोंके बलपर आदमी अकल्याणके सिंहद्वारपर शान्तिका रास्ता टटोलता फिरता है। इससे शान्ति तो नहीं मिलती, स्वस्थता भी चली जाती है।

—शेष प्रश्न

मनुष्य जितना ही चाहता है, उतनी ही उसकी प्राप्त करनेकी शक्ति घटती है। अभावपर विजय पाना ही जीवनकी सफलता है। उसे स्वीकार करके उसकी गुलामी करना ही कायरपन है।

—तरुणोंका विद्रोह

● ● ● धर्म

लड़ाई-झगड़ा, वाद-विवाद और होड़ा-होड़ी करके चाहे जो चीज़ मिल जाय पर धर्म-जैसी चीज़ नही मिल सकती।

—गृहदाह

हिन्दुओमे जो लोग यह कहकर शिकायत करते है कि देश-विदेशमें उनका मस्तक हम लोग (ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी आदि) जितना नीचा कर रहे है, उतना ईसाई-पादरी भी नही कर सकते हैं ठीक ही कहते है।...वास्तवमे विदेशी विधर्मियोके हाथमें हम जैसे विभीषण और कोई नही दिखाई देते।

यदि ऐसा न होता तो मंदिरमें धर्मकी वेदीपर खडे होकर रामके लिए 'रमवा', हरीके लिए 'हरिया', और नारायणके लिए 'नारायना' क्यो निकलता? सबको सम्बोधित करके वे उच्च कंठसे किसलिए इस बातकी घोषणा करते है कि अभागे लोग अगर अघाटमे डूब मरना नही चाहते तो हमारे इस पक्के घाटमें आवे। धर्मोपदेशकके ताल ठोकनेसे समाजके सभी लोगोका ख़ून भक्तिसे जैसे गर्म हो जाया करता है, उसी तरह श्रद्धासे क्रुद्ध भी हो उठता है।

—गृहदाह

जिस समय प्रतिदिन किये हुए नियमके पालनमे मनुष्य एकान्तमग्न रहता है, उस समय उसके नेत्रोंकी दृष्टि भी नष्ट हो जाती है। उस समय वह किसी तरह यह नही देख सकता कि धर्म कौन-सा है और अधर्म कौन-सा है।

—नारीका मूल्य

धर्म वस्तुको एक दिन हम लोगोंने (ब्राह्मसमाजियोंने) जैसे दल बाँधकर मतलब गाँठकर पकडना चाहा था, वैसे उसे नहीं पकडा जा सकता। खुद पकडाई दिये बगैर शायद उसे पाया ही नही जा सकता। परम दुःखकी मूर्त्तिके रूपमे जब वह मनुष्यकी चरम वेदनाकी छातीपर पैर रखकर अकेला आ खडा हो, तब तो उसे पहचान ही लेना चाहिए—ज़रा भी भूल-भ्रांति उससे सही नही जाती; ज़रामें मुँह फेरकर लौट जाता है वह।

—गृहदाह

जिस धर्मने स्नेहकी मर्यादा नहीं रखने दी, जिस धर्मने निःसहाय आर्त नारीको मृत्युके मुँह में डाल जानेमे ज़रा भी दुविधा नही की, चोट खाकर जिस धर्मने बड़ेसे बड़े स्नेहशील वृद्धको भी ऐसा चंचल और प्रतिहिंसासे ऐसा निष्ठुर कर दिया, वह धर्म कैसा? जिसने उसे अंगीकार किया है वह कौन-सी सत्य वस्तुको ढो रहा है? जो धर्म है वह तो वर्मकी तरह आघात सहने हीके लिए है, यही तो उसकी अन्तिम परीक्षा है।

—गृहदाह

जिन लोगोंका भगवान् जितना ही अधिक सूक्ष्म और अधिक जटिल है, वे लोग उतने ही ज़्यादा उलझकर मरते हैं, और जिन लोगोंके भगवान् जितने ही अधिक स्थूल और सहज हैं, वे लोग उलझनोंसे उतनी ही दूर, किनारेके निकट हैं।

—शेष प्रश्न

ईश्वरको मानना असलमें नुकसानका कारोबार है। कारोबार जितना ही विस्तृत और व्यापक होगा, नुकसान भी उतना ही बढ जायगा।

—शेष प्रश्न

प्रथा जब एक बार धर्मका रूप धारण करके खड़ी हो जाती है, जब उससे देवता प्रसन्न होने लगते है और परलोकका कर्म सँवरता है, तब फिर कोई भी निष्ठुरता असाध्य नहीं रह जाती। वल्कि कार्य जितना ही अधिक निष्ठुर होता है, और जितना ही अधिक वीभत्स होता है, पुण्यका वजन भी उतना बढ़ जाता है।

—नारीका मूल्य

मनुष्यका धर्म जब संसारका रूप धारण कर लेता है, तभी वह यथार्थ हो जाता है। जीवनके कर्त्तव्यमे फिर कोई संघर्ष या टक्कर नही होती। उसे माननेके लिए अपने ही साथ लड-लडकर नही मरना पडता।

—विप्रदास

संसारके साधारण नियमोको ही सिर्फ मानते है लोग, उनके व्यतिक्रमको नहीं मानना चाहते। और मज़ा यह है कि इस व्यतिक्रमके ही बलपर टिका हुआ है धर्म, टिका हुआ है पुण्य, काव्य-साहित्य, अविचलित श्रद्धा और विश्वास; सब कुछ।

—विप्रदास

जिस धर्म-कर्ममें मन प्रसन्न न होकर ग्लानिके भारसे काला ही होता रहता है, उसे धर्म समझकर अंगीकार ही कैसे किया जाता है?

—श्रीकान्त, पर्व ३

जो लोग अधर्मसे नहीं डरते और जिन्हे लज्जा नही, उन लोगोंको अगर प्राणोका भय इतना अधिक न हो तो यह संसार मिट्टीमें मिल जाय।

—रमा

धर्मका दण्ड माँका मुँह नहीं देखता रहता।

—रमा

अन्यायको क्षमा करना, यह सच है, अधर्मको प्रश्रय देना है, किन्तु इस बातको भी तो स्वीकार किये बिना नहीं रहा जा सकता कि अधर्म भी धर्मका ही एक रूप है, एक पहलू है। जो क्षमा प्रेम-प्यारके बीच पैदा होती है, उस प्रेमका मर्म अगर कभी तुम जान पाओगे, तो समझ सकोगे कि अन्याय, अधर्म और अक्षमताको क्षमा करके प्रश्रय देना धर्मका ही अनुशासन है।

—चरित्रहीन

कोई भी धर्म हो, उसके कट्टरपनको लेकर गर्व करनेके बराबर मनुष्यके लिए ऐसी लज्जा की बात, इतनी बड़ी बर्बरता और दूसरी नहीं है।

—निबन्धावली—वर्तमान हिन्दू-मुसलिम-समस्या

एक बड़े मजेकी बात है कि संसारके सबसे अधिक प्रसिद्ध नास्तिक सबसे बढ़कर बेवकूफ रहे हैं। भगवान्‌की लीलाका अन्त नहीं है, वे अपने इस 'न' रूपमें ही उनके मनका पन्द्रह आना भाग भरे रहते हैं, इस बातका उन्हें ख्याल ही नहीं आता।

—स्वामी

"तुम तो भगवान् को नहीं मानते, पर जो वास्तवमें मानता है, वह दिन-रात प्रार्थना करता है कि उसके 'विश्वास' को वे नष्ट न कर दें।"

—गृहदाह

संसारमें वे हमेशासे अत्याचारसे दबे हुए हैं, पीड़ित हैं, दुर्बल हैं, और इसीलिए मनुष्यके स्वाभाविक अधिकारसे सबलों द्वारा वंचित कर दिये गये हैं, अपनेपर विश्वास करनेका दुनियामें कोई कारण, जिन्हें ढूँढे नहीं मिलता,—देवता और दैवके प्रति उन्हींका विश्वास सबसे ज्यादा होता है।

—अनुराग

मनुष्यके दोषो और गुणोका आरोप करके छोटे-मोटे ठाकुर देवता बनाकर, निरक्षर-अपढ लोग जिस तरह भक्तिसे भावना करते है, वैसे ही केवल भावना की जा सकती है। नही तो ज्ञानके अभिमानसे ब्रह्म बनाकर जो लोग उसे सोचना चाहते है, वे केवल अपनेको धोखा देते है।

—चरित्रहीन

सिर्फ हिन्दू धर्ममें ही नही, यह विश्वास सभी धर्मोंमे है। मगर सिर्फ विश्वासके ज़ोरसे ही तो कोई बात कभी सत्य नही हो जाती। न त्यागके ज़ोरसे ही वह सच हो सकती है और न मृत्यु-वरण करनेके ज़ोरसे ही। संसारमे अत्यन्त तुच्छ-तुच्छ मतभेदोंके कारण बहुत-से प्राणोका बहुत बार लेना-देना हो चुका है। उससे ज़िदका ज़ोर ही प्रमाणित हुआ है, विचारोंकी सत्यता प्रमाणित नही हुई। योग किसे कहते है सो मै नही जानती, अगर वह निर्जन स्थानमे बैठकर केवल आत्मविश्लेषण और आत्म-चिंतन करना ही है तो मै यही बात ज़ोरके साथ कहूँगी कि इन दो सिंहद्वारोंसे जितने भ्रम और जितने मोहने प्रवेश किया है, उतना और कहींसे नही। ये दोनो अज्ञानके ही सहचर है।

—शेष प्रश्न



• • • शास्त्र

इस संसारमे जो कुछ सोचने-विचारनेकी वस्तु थी, वह समस्त ही त्रिकालज्ञ ऋषिगण भूत, भविष्य, और वर्तमान, इन तीनो कालोंके लिए पहलेसे ही सोच-विचारकर स्थिर कर गये है, दुनियामें अब नये सिरेसे चिन्ता करने को कुछ बाकी ही नही बचा। मैं जानता हूँ कि इसका जवाब देते ही आलोचना पहले तो गरम और फिर व्यक्तिगत कलहमें परिणत होकर अत्यंन्त कड़वी हो उठती है। त्रिकालज्ञ ऋषियों की मैं अवज्ञा नहीं कर रहा हूँ, मैं भी उनकी अत्यन्त भक्ति करता हूँ, मैं तो सिर्फ इतना ही सोचता हूँ कि वे दया करके अगर सिर्फ हमारे इस कालके लिए न सोच जाते, तो अनेक दुरूह चिन्ताओंके दायित्वसे वे भी छुटकारा पा जाते और हम भी सचमुच ही आज जीवित रह सकते।

—श्रीकान्त, पर्व ३

वे (शास्त्रकार) कह गये हैं कि पैशाच विवाह भी विवाह है। पुरुषोंके साथ उनकी इतनी अधिक सहानुभूति है, उनपर उनकी इतनी अधिक दया है। अगर उन शास्त्रकारोंमें इतनी दया न होती तो क्या पुरुष उन्हें कभी मानते? या आज इस बीसवीं शताब्दीमें उन शास्त्रकारोंके पास यह पूछनेके लिए दौड़े जाते कि इस बीसवीं शताब्दीमें भी विधवा-विवाह करना उचित है या नही? वे न जाने कबके सब पोथी-पत्रे उठाकर नदीमें डुबो देते और अपने मनके मुताबिक एक नया शास्त्र बना डालते।

—नारीका मूल्य

पुरुष उस समय (समाज-व्यवस्थापर विचार करनेके समय) पिता बनाकर कन्याके दुःखका विचार नहीं करता। वह उस समय केवल पुरुष रहकर पुरुषोंके स्वार्थका ही विचार करता है। वह केवल इसी प्रकारके उपायो की उद्भावना करता रहता है कि स्त्रियोसे किस प्रकार और कितना अधिक वसूल किया जा सकता है। इसके बाद मनु आते है, पराशर आते है, मूसा आता है, पाल आते हैं, । और वे लोग श्लोकपर श्लोक बनाते जाते और शास्त्रोंकी रचना करते जाते है। स्वार्थ उस समय धर्म बनकर मजबूत हाथोसे समाजका शासन करनेका अधिकार प्राप्त करता है। देशका पुरुष-समाज व्यासदेव होता है, और शास्त्रकार केवल उस समाजके बनाये हुए नियमोको लिखनेवाले गणेश जी। सभी देशोंके शास्त्र बहुत कुछ इसी प्रकार प्रस्तुत हुए है।

—नारीका मूल्य

इस बातका हम एकबार भी विचार नही करते कि पंडित केवल शास्त्रोंके श्लोक ही जानते है, इसके सिवा और कुछ भी नही जानते। हमलोग इस बातका विचार नही करते कि यदि विद्याका चरम उद्देश्य हृदयको प्रशस्त करना है, तो फिर उन पंडितोमेसे अधिकांशका पढना-लिखना बिल्कुल ही व्यर्थ हुआ है।

—नारीका मूल्य

वास्तवमें यदि कोई शास्त्र पुरुषोंके आन्तरिक अभिप्रायोंके साथ मेल न खाता हो, तो फिर पुरुष उसे अधिक दिनो तक नही मानते। जो शास्त्र उनके अभिप्रायोसे मेल खा जाता है वह तो तुरन्त ही टकसाली हो जाता है, और नही तो अगर स्वयं भगवान् भी उतर आये और बीच सडकमें खडे होकर और स्वयं अपने मुँहसे चिल्लाकर कहें, तो भी उसे कोई नही मानता।

—नारीका मूल्य

दुर्गा-पूजाके समय महाष्टमी दो घड़ी आगे हो या पीछे हो, बिल्ली मारनेका प्रायश्चित्त एक गण्डा रुपये हों या पाँच गण्डे रुपये हों, महन्तजी महाराज वेश्या रखनेसे स्वर्ग जायेंगे या विवाह करनेसे पतित होंगे,—आदि प्रश्नोंकी मीमांसा वही लोग (पंडित) करें, इसमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं। परन्तु समाजकी भलाई या बुराई किस बातमें है और किस बातमें नहीं है, किस नियमको प्रचलित करनेसे अथवा किस नियममें परिवर्तन करनेसे आधुनिक समाजका कल्याण या अकल्याण होगा, स्वदेशके हितके लिए विलायत जानेमें जात जायगी या नहीं, आदि दुरूह विषयोंमें उनका हाथ डालना अनधिकार चर्चा ही है।

—नारीका मूल्य

एक सिर्फ़ हमारे देशके ही नहीं, दुनियाके किसी भी देशके पुरखा 'शेष-प्रश्न' का जवाब नहीं दे गये हैं। दे गये हों ऐसा हो भी नहीं सकता, क्योंकि फिर तो सृष्टि ही रुक जाती। इसके चलनेका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

—शेष प्रश्न

मन ही अगर दिवालिया हो जाय, तो फिर पुरोहितके विवाह-मंत्रको महाजन बनाके खड़ा करनेसे सूद भले ही अदा हो जाय, पर असल तो डूब ही जायगा।

—शेष प्रश्न

जो सत्य है, उसीको सब समय, सभी अवस्थाओंमें ग्रहण करनेकी चेष्टा करो। इससे चाहे वेद ही मिथ्या हो जाय, चाहे शास्त्र ही मिथ्या हो जायें। ये सत्यसे बढ़कर नहीं हैं, सत्यकी तुलनामें इनका कोई मूल्य नहीं है।

—चरित्रहीन

एक दिनके किसी एक अनुष्ठान (विवाह) के ज़ोरसे अगर उसका (स्त्री) छुटकारेका रास्ता सारे जीवनके लिए रोक दिया जाय तो वह श्रेयकी व्यवस्था नही मानी जा सकती। संसारमें सभी भूल-चूकोंके सुधारकी व्यवस्था है, कोई उसे बुरा नहीं बताता; फिर भी जहाँ भ्रान्तिकी सम्भावना सबसे ज़्यादा है (विवाहमे), और उसके निराकरणकी आवश्यकता भी उतनी ही अधिक है, वही लोगोने अगर सारे उपायोंको अपनी इच्छासे बन्द कर रखा हो तो वह अच्छा कैसे मान लिया जाय।

—शेष प्रश्न

यह कहना कि आचार-अनुष्ठान मनुष्योंके लिए धर्मसे भी बडी वस्तु हैं वैसा ही है जैसा कि राजाकी अपेक्षा राजाके कर्मचारियोको बडा बताना।

—शेष प्रश्न

"संसारमें सत्य ही बडा है, इस बातको हम सभी मानते हैं, पर अनुष्ठान भी तो मिथ्या नही है।"

—शेष प्रश्न

"अनुष्ठानको मै मिथ्या तो कह नही रही। जैसे कि प्राण भी सत्य हैं और देह भी,—लेकिन जब प्राण निकल जाते है तब ?"

—शेष प्रश्न

"आचार-अनुष्ठानको झूठा बताकर मैं उडा देना नही चाहती; मै करना चाहती हूँ सिर्फ़ उसमें परिवर्तन। समयके धर्मानुसार आज जो अचल हो रहा है, चोट पहुँचाकर मैं उसीको सचल कर देना चाहती हूँ।"

—शेष प्रश्न

समाजके प्रचलित विधि-विधानोंके उल्लंघन करनेका दुःख सिर्फ़ चरित्रबल और विवेक-बुद्धिके बलपर ही सहन किया जा सकता है।

—शेष प्रश्न

कोई भी धर्म-ग्रन्थ कभी अभ्रान्त सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्म-ग्रंथ है, अतएव उनमे भी मिथ्याका अभाव नही है।

—चरित्रहीन

"शास्त्रकी ज़बर्दस्ती और दम्भकी बाते सुनकर मेरी देह जल उठती है। तुम भी नहीं जानते, मैं भी नही जानती। तो फिर भाई इतनी ज़बर्दस्ती, इतना विधि-निषेधका आडम्बर, इतनी मिथ्या बातोंसे झोली भरनेकी चेष्टा क्यो? सारे ही कामोंमें मानो भगवान् उन्हें मध्यस्थ रख कर काज करते है, ऐसी दाम्भिक अनुशासनोंकी धूम है। खाते-पीते, उठते-बैठते भगवान्‌की दोहाई और धर्मकी दोता-किटकिट। क्यो भाई, क्यो इस तरह हँसे, क्यो इस तरह खाँसे, अथच तेज इतना कि कहीं पर किसीने रत्तीभर भी कारण दिखानेकी ज़रूरत नहीं समझी। सिर्फ ज़बर्दस्ती ही ज़बर्दस्ती! तुमको गोहत्या, ब्रह्महत्याका पाप लगेगा, तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा, तुम्हारी चौदह पीढ़ियाँ नरकमे गिरेंगी। क्यो गिरेंगी? तुमसे यह किसने कहा? श्रुति, स्मृति, तन्त्र, पुराण, सभीमें यह ज़ोर-ज़बर्दस्ती और लाल आँखे दिखाना है।"

—चरित्रहीन



क्रान्तिकारी—देशकी मिट्टी इनकी देहका मांस है, देशका पानी इनकी नसोंका ख़ून है—सिर्फ देशकी मिट्टी-पानी ही नहीं, देशके पहाड़-पर्वत, वन-जंगल, सूर्य-चन्द्र, नदी-नाले, छाया-प्रकाश जो भी कुछ है, सबको मानो अपने सब अंगोंसे ये सोख लेना चाहते हैं। शायद इन्हींमेंसे किसीने किसी सतयुगमें पहले-पहल जननी-जन्मभूमि शब्दका आविष्कार किया था।

—अधिकार

क्रान्तिकारी—उनकी नस-नसमें भगवान्‌ने ऐसी आग जला दी है कि उन्हें चाहे जेलमें ठूँस दो, चाहे शूली पर चढ़ा दो,—कह न दिया कि पञ्च-भूतोंको सौंपनेके सिवा और कोई सज़ा ही लागू नहीं होती। न तो इनमें दया-माया है, न धर्म-कर्म ही मानते हैं।

—अधिकार

क्रान्ति शान्ति नहीं है। उसे हिंसामेंसे ही चलना पड़ता है,—यही उसका वर है और यही उसका अभिशाप।

—अधिकार

आदमीके चलनेका रास्ता आदमी बिना लड़े कभी नहीं छोड़ता।

—अधिकार

'हड़ताल' नामक एक चीज़ है, पर 'निरुपद्रव हड़ताल' नामकी कोई चीज़ नहीं है। संसारमें कोई भी हड़ताल कहीं सफल नहीं होती जब तक उसके पीछे बाहुबल न हो।

—अधिकार

अशान्ति फैलानेके माने अकल्याण फैलाना नहीं है। 'शान्ति, शान्ति, शान्ति'—सुनते-सुनते कान बहरे हो गये। मगर इस असत्यका कौन लोग प्रचार करते हैं, जानती हो इस मिथ्या मंत्रके ऋषि वही हैं जो दूसरोंकी शान्ति लूटकर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और प्रासाद बनाकर रास्ता रोक बैठे हैं। वञ्चित, पीड़ित और उपद्रवित नर-नारियोंके कानमें लगातार इस मंत्रको जप-जपकर उन्हें ऐसा कर दिया है कि वे भी अशान्तिके नामसे चौंक पडते है और सोचते हैं कि शायद यह पाप है, शायद यह अमंगल है। बँधी हुई गायको भूखों मरते देखा है? वह खडी-खडी मर जाती है, मगर उस पुरानी कमज़ोर रस्सीको तोड कर मालिककी शान्ति नष्ट नहीं करती।

—अधिकार

धनिककी आर्थिक हानि और ग़रीबका अनशन एक चीज़ नहीं। ग़रीबके उपायहीन बेकार दिन उसे दिनपर दिन भुखमरीकी ओर ढकेलते ले जाते हैं। उसके बाल-बच्चे और स्त्री-परिवार सब भूखे रोते रहते हैं,—उनका लगातारका क्रन्दन आख़िर उसे पागल बना देता है और तब उसे दूसरेका अन्न छीन खानेके सिवा जीवन-धारणका और कोई उपाय नहीं सूझता।

—अधिकार

जो चिनगारी शहर भरको जलाकर भस्म कर देती है वह आकारमें कितनी बड़ी होती है? शहर जब जलता है तब अपना ईंधन आप ही इकट्ठा करके भस्म होता रहता है—उसके भस्म होनेकी सामग्री उसीमें संचित रहती है। विश्वविधानके इस नियमको कोई भी राजशक्ति किसी भी दिन व्यतिक्रम नहीं कर सकती।

—अधिकार

वस्त्रहीन, अन्नहीन, ज्ञानहीन, दरिद्रोंका पराजय तो सत्य हुआ और उनके सारे हृदयमे जो ज़हर (असन्तोष) भरकर चारों ओर फैलने लगता है, वह सत्य नही होगा? वही तो हमारा मूलधन है। कही भी किसी देशमे सिर्फ क्रान्तिके लिए क्रान्ति नही मचाई जा सकती, उसका कोई न कोई आधार अवश्य होना चाहिए। यही तो हमारा (क्रान्तिकारियोंका) अवलम्बन है। जो मूर्ख इस बातको नही जानता—सिर्फ मज़दूरोंकी कमी-वेशीके लिए हड़ताल कराना चाहता है, वह मज़दूरोंका भी सर्वनाश करता है और देशका भी। (अन्तिम उद्देश्य स्वाधीनताकी ओर संकेत है)

—अधिकार

आइडिया (Idea) के लिए,—आदर्शके लिए प्राण देने लायक प्राणोंकी आशा शान्तिप्रिय निर्विरोध किसानोंसे करना वृथा है। वे स्वाधीनता नही चाहते, वे चाहते हैं शान्ति;—जो शान्ति असमर्थ और अशक्तोंकी है—वह पंगु जडत्व ही उनकी अधिक कामनाकी वस्तु है।

—अधिकार

इसके सिवा हम क्रान्तिकारी हैं, पुरानेका मोह हम लोगोंमें नही है। हमारी दृष्टि, हमारी गति, हमारा लक्ष्य सिर्फ सामनेकी तरफ है। पुरानेको ध्वंस करके ही तो हमे रास्ता बनाना पड़ता है। जीर्ण और मृत ही अगर रास्ता रोके रहेगे, तो हमारे अधिकारके दावेको रास्ता कैसे मिलेगा?

—अधिकार

पराधीन देशकी मुक्ति-यात्रामे रास्तेका परहेज कैसा? पराधीन देशके शासकों और शासितोंकी नैतिक बुद्धि जब एक-सी हो जाती है तो उससे बढकर देशका दुर्भाग्य और कुछ नहीं होता।

—अधिकार

अपने भइया (क्रान्तिकारी) को फाँसी होनेका समाचार जब कभी सुनो, तो समझ लेना कि विदेशियोंके हुक्मसे वह फाँसी अपने ही देशके किसी आदमीने उसके गलेमें पहनाई है। पहनायेगा ही। कसाई-खानेमेंसे गऊका मांस गऊ ही तो ढोकर लाती है। फिर उसकी शिकायत कैसी ?

—अधिकार

दूरसे आकर जिन लोगोंने हमारी जन्मभूमिपर कब्ज़ा कर रखा है, हमारी मनुष्यता, हमारी मान-मर्यादा, हमारी भूखका अन्न और प्यासका पानी—सब कुछ जिन लोगोंने छीन लिया है उनको तो हमारी हत्या करनेका अधिकार है और हमको नहीं ? यह धर्मबुद्धि तुम्हें भला कहाँसे मिली ? छिः।

—अधिकार

शान्ति-स्वस्तिहीन, सम्मानवर्जित प्राण क्या केवल भारतके तरुणोंके-लिए ही इतने बड़े लोभकी वस्तु है ? देशको क्या बूढ़े लोग बचावेंगे ? इतिहास पढ़कर देखो। तरुण-शक्तिने हरएक देशमें, हर समयमें अपनी मृत्युसे जन्मभूमिको ध्वंसके ग्राससे बचाया है।

—तरुणोंका विद्रोह

किसी भी देशमें केवल विप्लवके लिए ही विप्लव नहीं लाया जाता। अर्थहीन-अकारण विप्लवकी चेष्टामें केवल रक्तपात ही होता है, और कोई फल नहीं प्राप्त होता। विप्लवकी सृष्टि मनुष्यके मनमें होती है केवल रक्तपातमें नहीं।

—तरुणोंका विद्रोह

बाघको विष्णुमंत्र सुनानेसे वह वैष्णव होता है या नहीं, यह मैं नहीं सोच पाता।

—नियन्त्रावली—शिक्षाका विरोध

स्वाधीनताके संग्राममे विप्लव ही अपरिहार्य मार्ग नहीं है। जो लोग यह समझते है कि दुनियामे और सब कामोके लिए आयोजनका प्रयोजन है, केवल विप्लव ही ऐसा काम है जिसमे तैयारीकी ज़रूरत नही होती—उसे शुरू कर देनेसे ही चल जाता है, वे और चाहे जितना कुछ जाने, विप्लव-तत्त्वकी कोई ख़बर ही नहीं जानते।

—तरुणोका विद्रोह

बाघके मुँहपर खडे होकर, हाथ जोडकर, उससे वैष्णव होनेका अनुरोध करनेका कुछ फल होनेका भरोसा जैसा मुझे नहीं होता, वैसे ही यह विश्वास भी मै नही करता कि जो वरका बाप कन्यादायग्रस्तके कान उमेठकर रुपये वसूल करनेकी आशा रखता है उसे दाता कर्ण बननेका उपदेश देनेसे कुछ लाभ होगा।

—निबन्धावली—स्वराज्यकी साधनामे नारी

• • • स्वाधीनता और संस्कृति

जिसका भार, जिसका गौरव तुमलोग सम्हाल नहीं सकते, उसपर तुम्हारा यह स्पर्धा का लोभ किस लिए? स्वाधीनताका जन्मगत अधिकार है, सिर्फ मनुष्यत्वको, केवल मनुष्यको नहीं; इस बातको कौन अस्वीकार करेगा?

—अधिकार

मुक्ति क्या इतनी छोटी ज़रा-सी चीज़ है? उसे क्या तुम आरामसे नहानेका हौज समझे बैठे हो? नहीं, वह समुद्र है। उसमें भय तो है ही—उत्ताल तरंगे तो उसमें होंगी ही और मगर आदि भी होंगे, नावें वहीं डूबती हैं,—फिर भी वही जगत्के प्राण हैं,—उसीमें सम्पूर्ण शक्ति, समस्त सम्पदा और सम्पूर्ण सार्थकता है। निरापद तालाबके भरोसे सिर्फ प्राण धारण किया जा सकता है,—जीवित नहीं रहा जा सकता।

—अधिकार

मनुष्यका विचार ही उसके कार्यको नियंत्रित करता है; परन्तु दूसरोंके विचार-द्वारा निर्धारित कार्य जब हमारे स्वाधीन विचारका मुँह बन्द कर देता है तब उससे बढ़कर आत्महत्या मेरी समझमें हमारे लिए और कुछ हो ही नहीं सकती।

—अधिकार

स्वाधीनता ही स्वाधीनताका अन्त नहीं है। धर्म, शान्ति, काव्य-आनन्द—यह और भी बड़े हैं। इनके चरम विकासके लिए स्वाधीनता चाहिए, नहीं तो उसका मूल्य ही क्या है?

—अधिकार

यदि सभ्यताके कुछ भी मानी हों, तो वह यही है कि असमर्थ और कमजोरोंके न्यायोचित दावे ज़बर्दस्तोंके बाहुबलसे परास्त न हों।

—अधिकार

कोई भी आदर्श सिर्फ इसलिए कि वह बहुत काल तक स्थायी रहा है, नित्य स्थायी नहीं हो सकता और उसके परिवर्तनमें लज्जाकी कोई बात नहीं, उससे जातिकी अगर विशिष्टता भी जाती हो तो भी नहीं। कितने काव्य, कितने कथानक, कितनी धर्म-कथाएँ इसपर रची जा चुकी है। अतिथिको खुश करनेके लिए दाता कर्णने अपने पुत्र तककी हत्या कर दी थी। इस बातपर न जाने कितने आदमियोंने आँसू बहाये होंगे। फिर भी, यह कार्य आज सिर्फ़ कुत्सित ही नहीं बल्कि बीभत्स माना जायगा। एक सती स्त्रीने पतिको कंधेपर रखकर गणिकालय पहुँचा दिया था,—सतीत्वके इस आदर्शकी भी किसी दिन तुलना नहीं थी,—मगर आज अगर ऐसी घटना कहीं हो जाय तो वह मनुष्यके हृदयमें सिर्फ घृणा ही उत्पन्न करेगी।

—शेष प्रश्न

हो अनेक युगोंका। सिर्फ वर्ष गिनकर ही आदर्शका मूल्य नहीं आँका जाता। अचल अटल ग़लतियोंसे भरे समाजके हज़ारों वर्ष भी, सम्भव है, भविष्यके दस वर्षके गतिवेगमें वह जायें। वे दस वर्ष ही उन हज़ारों वर्षोंसे बहुत ज़्यादा बड़े है।

—शेष प्रश्न

बाहर अगर प्रकाश हो रहा हो और पूर्व आकाशमें अगर सूर्योदय हो रहा हो, तो भी पीछे मुड़कर पश्चिमके स्वदेशकी ओर देखना पड़ेगा! और वहीं होगा स्वदेश-प्रेम!

—शेष प्रश्न

"यह कोई युक्ति नहीं है कि प्राचीन कालके ढाँचेमें ढाल देना ही वास्तवमें मनुष्य बना देना है?"

"लेकिन वही तो हमारे भारतवर्षका आदर्श है।"

"पर यह किसने तय किया कि भारतका आदर्श ही चिर युगका चरम आदर्श है?"

—शेष प्रश्न

किसी एक देश-विशेषमें पैदा हो जानेकी वजहसे ही उसका आचार-विचार छातीसे क्यों चिपटाये रहना पड़ेगा? चली ही गई उसकी अपनी विशेषता, तो इसमें हर्ज किस बातका? इतनी ममता क्यों? विश्वके समस्त मानव अगर एक ही विचार, एक ही भाव, एक ही विधि-विधानकी ध्वजा थामके खड़े हो जायँ, तो इसमें हानि ही क्या है? यही डर है न कि फिर भारतीयके तौरपर हम पहचाने नहीं जायेंगे? न पहचाने जायँ, न सही। इस परिचयपर तो कोई आपत्ति नहीं करेगा कि विश्वकी मानव-जातिमें हम एक हैं, उसका गौरव क्या कुछ कम है?

—शेष प्रश्न

यही बात है! ऐसा ही काम है देशका कि माँको भी नहीं माना जा सकता।

—विप्रदास

योग्य नहीं बनोगे तो योग्यताका पारितोषिक तुम्हें कौन देगा? अयोग्य होनेपर भी किसी तरह अगर तुम योग्यताका पुरस्कार पा ही गये तो वह कै रोज रहेगा तुम्हारे पास? श्रीमंतोंके कपूतोंकी भाँति पलक मारते-न-मारते लक्ष्मी ग़ायब हो जायगी।

—आगामी कल

अब मालूम हुआ है कि (स्त्रियोंको) स्वाधीनता तत्त्व-विचारसे नही मिलती, न्याय और धर्मकी दुहाई देनेसे भी नहीं मिल सकती, सभामे खडे होकर पुरुषोके साथ कलह करनेसे भी नहीं मिलती—असल मे स्वाधीनता-जैसी चीज़ कोई किसीको दे ही नही सकता—लेने-देनेकी यह चीज़ ही नही। स्वाधीनता हमारी अपनी पूर्णतासे, आत्माके अपने विस्तारसे, स्वतः ही आ जाती है। बाहरसे अडेका छिलका तोड़कर भीतर के जीवको मुक्ति देनेसे वह मुक्ति नही पाता, बल्कि मर जाता है।

—शेष प्रश्न

इमेन्सिपेशन (Emancipation मुक्ति) के लिए चाहे कितनी ही स्त्रियाँ मिलकर झगडा क्यो न करती, देनेवाले असल मालिक पुरुष ही है, हम स्त्रियाँ नही। संसारके क्रीत दासोको उनके मालिकोने ही एक दिन स्वाधीनता दी थी, और उस दिन उनकी तरफसे लडे भी थे वे ही जो मालिकोकी जातिके थे—दासोने युद्धके बलपर या युक्तियोके बलपर स्वाधीनता नही पाई। विश्वका नियम ही यह है कि शक्तिमान् ही शक्तिके बन्धनसे दुर्बलोको परित्राण देते है।

—शेष प्रश्न

चाहे लौकिक आचार-अनुष्ठान हो और चाहे पारलौकिक धर्म-कर्म, अपने देशकी चीज़ समझकर उसे गले लगाये रहनेमे स्वदेश-भक्तिकी वाहवाही तो मिल सकती है, पर स्वदेशके कल्याणके देवता उससे खुश नही किये जा सकते। बल्कि वे इससे नाराज़ ही होते हैं।

—शेष प्रश्न

काठके चर्खेसे लोहेकी मशीनको हराया नही जा सकता और ऐसा हो भी जाय तो उससे मनुष्यके कल्याणका मार्ग प्रशस्त नही होता।

—तरुणोंका विद्रोह

× × × किन्तु स्वाधीनता केवल नाममात्र ही तो नहीं है। दाताके दाहिने हाथके दान हीसे तो इसे भीखकी तरह पाया नहीं जाता—इसका मूल्य देना होता है।

—तरुणोंका विद्रोह

केवल घटनाक्रमसे भारतवर्षमें पैदा हुआ हूँ, इसलिए भारतकी स्वाधीनताके अधिकारका ज़ोरसे दावा करना भी किसी तरह सत्य नहीं हो सकता। काम करेंगे नहीं, मूल्य देंगे नहीं, फिर भी पावेंगे. प्रार्थनाका यह अद्भुत ढंग ही अगर हमने पकड़ा है तो निश्चय ही मैं कहता हूँ कि केवल समस्वर और ज़ोरदार गलेसे वन्दे मातरम् और महात्माजीकी जय-ध्वनिसे गला फाड़नेसे हमारा रक्त ही बाहर निकलेगा, पराधीनताकी भारी शिला सुईकी नोकभर भी टससे मस न होगी।

—निबन्धावली-मेरी बात

जान पड़ता है पराधीन देशका सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि मुक्ति-संग्राममें विदेशियोंकी अपेक्षा देशके आदमियोंके साथ ही मनुष्यको अधिक लड़ना पड़ता है।

—निबन्धावली-देशबन्धु चित्तरंजन

अगर ऐसा दुर्दिन कभी भारतको नसीब हो—वह अपने विगत जीवनके सारे ट्रैडीशन (परम्पराएँ) भूलकर इतना उन्नत हो उठे कि काले चमड़ेके सिवाय पश्चिमके साथ उसका कोई भेद ही न रह जाय तो भारतके भाग्य-विधाता ऊपर बैठे-बैठे उस दिन हँसेंगे या अपने बाल नोचेंगे. यह कहना कठिन है।

—निबन्धावली-शिक्षाका विरोध

• • • स्फुट

"यह हम औरतोंका स्वाभाविक धर्म ही है। हम अपने और पराये को एक ही दिनमे भूल जाती है।"

—पथ-निर्देश

ज़ोर-ज़बर्दस्तीसे जंगलके शेरको वशमे लाया जा सकता है, मगर ज़बर्दस्ती एक छोटा-सा फूल भी विकसित नही किया जा सकता।

—काशीनाथ

सूर्यकी अपेक्षा उससे तपे हुए बालूके संयोगसे ही शरीरमे अधिक फफोले पडते है।

—स्वामी

जो शराबी एक बार खालिस शराब पीना सीख लेता है, उसे पानी मिली हुई शराब थोडे ही अच्छी लगती है। तब तो निर्जल विष की ज्वालासे ही अपना कलेजा जलानेमे उसे अधिक सुख मिलता है।

—स्वामी

शराबी मित्रपर कोई चाहे कितना ही अधिक प्रेम क्यों न करे, पर जब किसीके ऊपर निर्भर करनेका अवसर आता है तब वह भरोसा करता है केवल उसीपर जो शराब नही पीता।

—स्वामी

संसारमें सृष्टि-विरुद्ध भले आदमी बने रहनेसे ही काम नहीं चलता, साथमे यह भी सीखने की आवश्यकता है कि कर्त्तव्य-पालन किस प्रकार करना चाहिए।

—स्वामी

जब किसी लड़केको उसकी मां ज़बरदस्ती खींचकर अपनी गोदमें लिटा लेती है, तब बाहरसे देखनेपर वह एक अत्याचार-सा मालूम होता है, पर उस अत्याचारके मध्यमें भी लड़केके सो जानेमें कुछ अड़चन नहीं आती।

—स्वामी

एक तो वैसेही मनुष्यकी मानसिक गतिविधि बहुत ही दुर्जेय होती है, और फिर किशोर-किशोरीके मनका भाव तो, मैं समझता हूँ बिल्कुल ही अज्ञेय है। इसीलिए शायद, श्रीवृन्दावनके उन किशोर-किशोरीकी किशोर-लीला चिरकालसे ऐसे रहस्यसे आच्छादित चली आती है। बुद्धिके द्वारा ग्राह्य न कर सकनेके कारण किसीने उसे कहा—'अच्छी' किसीने कहा 'बुरी'—किसीने नीतिकी दुहाई दी, किसीने रुचिकी और किसीने कोई भी बात न सुनी—वे तर्क-वितर्कके समस्त घेरोंका उल्लंघनकर बाहर हो गये, वे डूब गये, पागल हो गये और नाचकर, रोकर, गाकर—एकाकार करके संसारको उन्होंने मानो एक पागलखाना बना छोड़ा। तब जिन लोगोंने 'बुरी' कहकर गालियाँ दी थीं, उन्होंने भी कहा कि—और चाहे जो हो, किन्तु ऐसा रसका झरना और कहीं नहीं है। जिनकी रुचिके साथ इस लीलाका मेल नहीं मिलता था उन्होंने भी स्वीकार किया, इस पागलोंके दलको छोड़कर हमने ऐसा गान और कहीं नहीं सुना। किन्तु यह घटना जिस आश्रयको लेकर घटित हुई, जो सदा पुरातन है, और साथ ही चिर नूतन भी—वृन्दावनके वन-वनमें होनेवाली किशोर-किशोरीकी उस सुन्दरतम लीलाका अन्त किसने कब खोज पाया है? जिसके निकट वेदान्त तुच्छ है और मुक्तिफल जिसकी तुलनामें वारिधिके आगे वारि-बिन्दुके समान क्षुद्र है। न किसीने खोज पाया और न कोई कभी खोज पायगा।

—श्रीकान्त, पर्व १

"सब लोग तो उसे नहीं ठगेंगे; हाँ, कुछ लोग अवश्य ठग लेंगे। मगर वह तो किसीको न ठगेगा? बस यही बहुत है। तब लक्ष्मीजी उसके हाथमें आप ही आ जायँगी।"

—वैकुण्ठका दानपत्र

"कहाँ तो होना यह चाहिए कि बड़े-बड़े आदमियोंकी पुस्तकें पढ़ कर लोग भले बनें और एक दूसरेके साथ प्रेम करें, सो तो नहीं, एक ऐसी किताब लिखकर रख दी कि जिसे पढ़ते ही मनुष्यके प्रति मनुष्यके मनमें घृणा उत्पन्न हो जाय और इस बातपर विश्वास ही न हो कि सचमुच ही सब लोगोंके अन्तःकरणमें भगवान्‌का मन्दिर है।

—अन्धकारमें आलोक

हाँ, सो मनुष्यका स्वभाव ही है। तनिक-सा दोष देखते ही, कुछ क्षण पूर्वकी सभी बातें भूलते उसे कितनी-सी देर लगती है।

—श्रीकान्त, पर्व १

इतर (छोटे) लोग ही अनजान, अपरिचित लोगोंकी बातमें संदेह करते और भयसे पीछे हट जाते हैं।

—श्रीकान्त, पर्व १

(अपनेसे बड़ेकी मित्रता करनेका फल यह होता है) कि देखते-देखते 'मित्र' प्रभु बन जाता है, और साधकी मित्रताका पाश दासत्व की बेड़ी बनकर 'छोटे' के पैरोंको जकड़ लेता है।

—श्रीकान्त, पर्व १

अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बच्चेकी तरह एकान्तमें बैठ गया और लगातार चख-चखकर उसका उपभोग करने लगा।

—श्रीकान्त, पर्व १

रात्रिका भी रूप होता है और उसे, पृथ्वीके झाड़-पाले, गिरि-पर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं, उनसे अलग करके देखा जा सकता है। मैंने आँख उठाकर देखा कि अन्तहीन काले आकाश (अमावस्याकी रात थी) के नीचे सारी पृथ्वीपर आसन जमाये, गम्भीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यन्त सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोंके ऊपरसे मानो सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं? भला इतनी बड़ी झूठ बात मनुष्यने किस प्रकार मान ली होगी? इस ब्रह्माण्डमें जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है; वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्याही-जैसा काला है, अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अन्धकारमय है। सर्व लोकोंका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राणपुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें निविड़ अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें काली है, और इसीलिए उसका परलोक-पन्थ इतने दुस्तर अँधेरेमें मग्न है। इसीलिए राधाके दोनों नेत्रोंमें समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगतको बहा दिया, वह भी घनश्याम है।

—श्रीकान्त, पर्व १

गम्भीर स्वप्न तो सहा जा सकता है—क्योंकि असह्य होते ही नींद टूट जाती है, परन्तु जागते हुए स्वप्न देखनेमें तो दम अटकने लगता है, किसी तरह वह खतम नहीं होता; और नींद भी नहीं टूटती। कभी मालूम होता है यह स्वप्न है, कभी मालूम होता है यह सच है।

—[illegible] और [illegible]

यह हिन्दुस्तानियोंका देश (विहार) था। मै भले-बुरेकी बात नही कहता—मै सिर्फ यही कहता हूँ कि बंगाल देशकी नाईं वहाँकी औरतें (भिखारीके आनेपर) 'बाबा हाथ जोडती हूँ और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नही देती और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों मॉगते हो?' यह कैफ़ियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेद-भावके सब ही, प्रत्येक घरसे भिक्षा देते है—कोई विमुख नही जाता।

—श्रीकान्त, पर्व १

यह मैंने स्वदेश-विदेश सभी जगह देखा है कि जो काम लज्जित होने-जैसा है, उसमें बंगाली लोग अवश्य लज्जित होते हैं। वे भारत की अन्यान्य जातियोके समान बिना संकोचके धक्का-मुक्की मारा-मारी नहीं कर सकते।

—श्रीकान्त, पर्व २

अँग्रेज़ी राजमे डाक्टरोंका प्रबल प्रताप है। सुना है कसाईख़ानेके यात्रियोंको भी अन्दर जाकर ज़िबह होनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए इन लोगोंका मुँह ताकना पडता है।

—अधिकार

सुना है अँग्रेजोंके महाकवि शेक्सपियरने कहा है कि संगीतके द्वारा जो मनुष्य मुग्ध नही होता वह खून तक कर सकता है। किन्तु केवल एक मिनट भर सुन लेनेसे ही जो मनुष्यके ख़ूनको जमा दे ऐसे संगीत की ख़बर शायद उन्हे भी नही थी। जहाज़का गर्भ-गृह (जलयानमें) वीणापाणिका पीठ-स्थान है या नही, सो तो नही जानता; परन्तु यदि न होता तो यह कौन सोच सकता कि क़ाबुली लोग भी गाना गाते है।

—श्रीकान्त, पर्व २

अधिकांश स्थानोंमें देखा जाता है कि सचमुचकी विपत्ति काल्पनिक विपत्तिकी अपेक्षा बहुत अधिक सहज और सह्य होती है। पहले से ही इस बातका ख्याल रखनेसे अनेक दुश्चिन्ताओंसे छुटकारा मिल सकता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

वास्तवमें कलंक चीज़ ही ऐसी है कि लोग झूठे कलंकका भी भय किये बग़ैर नहीं रह सकते।

—श्रीकान्त, पर्व २

किसी आदमीके व्यथा सहनेके लिए तैयार हो जानेसे ही कुछ व्यथा देनेका कार्य सहज नहीं हो जाता।

—श्रीकान्त, पर्व २

अजीब देश है यह बंगाल! इसमें राह चलते माँ-बहनें मिल जाती हैं, किसमें सामर्थ्य है कि इनसे बचकर निकल जाय।

—श्रीकान्त, पर्व ३

ऐश्वर्यकी क्षमता इतनी भद्दी चीज़ है कि दूसरेसे उधार ली हुई होनेपर भी उसके अपव्यवहारके प्रलोभनको आदमी आसानीसे नहीं टाल सकता।

—श्रीकान्त पर्व ३

कर्महीन, उद्देश्यहीन जीवनका दिवारम्भ होता है श्रान्तिमें, और अवसान होता है अवसन्न ग्लानिमें।

—श्रीकान्त, पर्व ३

हृदयकी बर्बरताके साथ सिर्फ अश्रद्धा और उपहास करनेसे ही संसारमें सब प्रश्नोंका जवाब नहीं हो जाता।

—श्रीकान्त पर्व ३

एकका मर्मान्तक दुःख दूसरेके लिए जब उपहासकी वस्तु हो जाता है तो इससे बढ़कर ट्रैजेडी संसारमे और क्या हो सकती है ?

—श्रीकान्त, पर्व ३

लड़केको अगर दस-बीसमे एक—बड़ा बनाना हो, तो माँको दुनियाँ से न्यारी होनेकी ज़रूरत है ।

—बिन्दोका लल्ला

"मगर बहू; इतना भी अगर माफ नही कर सकती, तो बड़ी हुई थी क्यों ?"

—बिन्दोका लल्ला

मनुष्यको जो चीज़ मिलती नही, वही उसके लिए अत्यत प्रिय सामग्री हो जाया करती है । तुम अशान्तिमे हो शान्ति ढूँढते फिरते हो—मैं शान्तिसे दिन बिता रहा हूँ, तो भी न जाने कहाँसे अशान्ति खीच ले आता हूँ ।

—बोझ

छलको पकड़ना मानो मनुष्यका स्वभावसिद्ध भाव है । जो मछली भाग जाती है वही क्या ख़ाक बड़ी होती है ?

—बोझ

पापी अगर मर जाय तो प्रायश्चित्त कौन भोगेगा ?

—बोझ

कुछ लोग कमज़ोरोंके विरुद्ध अत्यंत असभ्य बात कर्कश और कठोर स्वरमें कहनेको ही स्पष्टवादिता समझते है ।

—हरिलक्ष्मी

"अच्छी हूँगी तो ऐसे ही हो जाऊँगी,—बाग्दी दूले (अस्पृश्य छोटी जातियो) के घर दवा खाकर कभी कोई नही जीता ।

—अनागिनी दा स्वर्ग

खातिरदारी-जैसी चीज़में मिठास ज़रूर है, पर उसका ढकोसला करनेमें न तो मिठास है और न स्वाद ही।

—षोडशी

"जिन्हे माँ कहकर पुकारा है, सन्तान होकर हम उनका न्याय करने नहीं बैठेंगे।"

—षोडशी

लोभ भी एक छूतकी बीमारी है।

—निष्कृति

एक बार सन्देहका बीज मनमें पड जानेपर व्यक्ति जैसे अपने शत्रु-पक्षपर सन्देह करना सीख जाता है, वैसे ही मित्र-पक्षसे भी उसका विश्वास उठ जाता।

—निष्कृति

जंगलमें रहनेवाले पक्षीकी अपेक्षा पिंजडेका पक्षी ही अधिक फट-फड़ाता है।

—बड़ी बहन

अपना कर्त्तव्य करनेके पहले दूसरेके कर्त्तव्यकी आलोचना करनेमें पाप होता है।

—पण्डितजी

रुपया पैसा कमाना और उन्नति दोनों एक ही नहीं हैं।

—पण्डितजी

आघात चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि वह प्रतिहत न हो, तो लगता नहीं है। पर्वतके शिखरसे गिरते ही मनुष्यके हाथ-पैर नहीं टूट जाते। टूटते वे तभी हैं जब पैरोंके नीचेकी कठिन भूमि उस वेगका प्रतिरोध करती है।

—पण्डितजी

मनुष्यकी परख तभी होती है जब रुपयोंका मामला आकर पड़ता है। इसी जगह धोखा-धड़ी नहीं चलती। यही मनुष्यका सच्चा स्वरूप दिखाई दे जाता है।

—रमा

संसारमें जितने पाप हैं उन सबसे बढ़कर पाप है मनुष्यकी दयाके ऊपर अत्याचार करना।

—रमा

धोनेसे कोयलेकी कालिख नहीं छूटती, उसे तो आगमें जलाना पड़ता है।

—रमा

जब आग सुलग जाती है तो यों ही नहीं बुझ जाती। ज़बर्दस्ती बुझा न दी जाय तो आस-पासकी चीज़ोंको भी तपा जाती है।

—रमा

एक ओर तो प्रबलकी अत्याचार करनेकी अखंड लालसा और दूसरी ओर निरुपाय लोगोंकी सहन करनेकी वैसी ही अविच्छिन्न कायरता। इन दोनोंको ही खर्व कर देना अच्छा है।

—रमा

कोई काम कभी यों ही निष्फल होकर यों ही शून्यमें नहीं मिल जाता। उसकी शक्ति कहीं न कहीं जाकर अपना काम करती ही है। लेकिन किस तरह करती है, उसका पता हर समय सबको नहीं लगता। और इसीलिए आजतक इस समस्याकी मीमांसा नहीं हो सकी है कि क्या एकके पापके लिए दूसरोंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि करना अवश्य पड़ता है।

—रमा

केवल सहते जाना ही संसारमें परम धर्म नहीं है।

—रमा

सिर्फ किसीकी भलाई करनेकी नीयतसे ही इस संसारमें भलाई नहीं की जा सकती। शुरूकी छोटी-बड़ी बहुत-सी सीढ़ियाँ पार करनेका धैर्य होना चाहिए।

—रमा

उपकारके बदलेमें यदि कोई प्रत्युपकार न करे, बल्कि उलटे उसके साथ अपकार करने लगे, तो भी उससे क्या बनता-बिगड़ता है, अगर मनुष्यकी कृतघ्नता दाताको नीचे न उतार लाये।

—रमा

एक आदमीपर आजन्म नज़दीक रहकर भी तिलभर विश्वास नहीं होता, और एक आदमीके सिर्फ़ दो ही चार घंटेके परिचयसे ही जी चाहता है कि उसके हाथ अपनी जान तक सौंप दी जाय तो कोई हर्ज नहीं।

—गृहदाह

किसी भी असत्यसे दीर्घकाल तक कोई फाँक या खाली जगह भरके नहीं रखी जा सकती।

—गृहदाह

चाहे कोई जात हो, या कोई आदमी, धीरे-धीरे जब वह हीन हो जाता है, तब उससे ज़्यादा तुच्छ चीज़पर ही सारा दोष मढ़कर वह तसल्ली कर लेता है। समझता है, इस आसान चीज़को सम्हाल लेनेसे ही वह रातों-रात बड़ा हो उठेगा।

—गृहदाह

प्राप्तिकी अदम्य धरतीसे विच्युत करके पाना कितना बड़ा बोझ है!

—गृहदाह

मृत्युका शोक जैसा बडा है उसकी शान्ति और माधुर्य भी वैसा ही बडा है।

—गृहदाह

अपनी भलाई और बुराई देखना कोई कठिन काम नही है; कठिन काम तो केवल उसे स्वीकार कर सकना ही है।

—नारीका मूल्य

यह चालबाज़ी चल सकती है कि हम मधुर रसका सारा रस नारियोंमेसे ही निचोड कर निकाल ले और स्वयं कुछ भी रस न दे, लेकिन यह चालबाज़ी सदा नहीं चल सकती। विश्वेश्वरके अलंघ्य न्यायालयमे एक न एक दिन पुरुप पकडे ही जायेगे। हो सकता है कि रस तो उस समय भी मधुर रहे परन्तु शायद उसका मधुर फल न रह जायगा।

—नारीका मूल्य

संसारमें जो अनेक वडे-बड़े कृती पुरुप हो गये है, उनके जीवनकी आलोचना करनेसे पता चलता है कि उन सभी लोगोने ऐसी माताएँ पाईं थी, जिनके कारण संसारमे उन्नति कर सकना असम्भव नही हो सका था।

—नारीका मूल्य

अपनी लापरवाहीसे अच्छे आदमीका भी बुरा हो जाना कोई असम्भव बात नही है।

—अनुराधा

चुपचाप और बिना विचारे ही सह लेनेको हम कर्त्तव्य समझ बैठे हैं। इसीसे तो उनका (अँग्रेज़) चोट पहुँचानेका अधिकार इतना दृढ और उग्र हो उठा है।

—अधिकार

अपने विरुद्ध अपनी बुराई घोषित करनेमें एक तरहकी निरपेक्ष स्पष्टवादिताका दम्भ है—एक तरहकी सस्ती ख्याति भी उससे फैल जाती है; परन्तु यह सिर्फ ग़लती ही नहीं झूठ भी है।

—अधिकार

"पराधीन देशका सबसे बड़ा अभिशाप यह कृतघ्नता ही तो है! जिनकी सेवा करने जाओगी, वे ही तुम्हें बेच देना चाहेंगे! मूढ़ता और कृतघ्नता तुम्हें हर क़दम पर सुई-सी चुभती रहेगी। यहाँ न श्रद्धा है और न सहानुभूति; कोई पास तक नहीं बुलायेगा, कोई सहायता देने नहीं आयेगा। ज़हरीला साँप समझकर सब दूर हट जायेंगे। देशसे प्रेम करनेका यही तो हम लोगोंके लिए पुरस्कार है।"

—अधिकार

कड़ुआहटके कारण संसार छोड़कर सिर्फ भाग्यहीन जीवन ही बिताया जा सकता है, वैराग्य-साधन नहीं किया जा सकता।

—अधिकार

दुष्ट घावके समान ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनकी विषैली भूख एक बार किसीकी भी त्रुटिका आसरा पा जाने पर फिर किसी प्रकार मिटना ही नहीं चाहती।

—दत्ता

जो नालिक है, उसे तर्कके समय सोलह आने हराकर भी अदायगीके समय उससे आठ आनेसे अधिक वसूल नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह पावना अन्त तक पक्का नहीं होता।

—दत्ता

जो काम अच्छा है, उसका अधिकार मनुष्य भगवानसे ही पाता है, उसे किसीके सामने हाथ पसार कर नहीं लेना होता।

—दत्ता

जिसका जहाँ स्थान नहीं है, जिसका जहाँ प्रयोजन नहीं है, वहाँ वह बचता नहीं।

—दत्ता

संसारमें बड़े कार्य भी किसी न किसीके लिए हानिकारक होते हैं।

—दत्ता

संसारमें जो लोग बड़े काम करने आते हैं, उनका व्यवहार हमारे समान साधारण लोगोंके साथ यदि अक्षर-अक्षर न मिले, तो उन्हें दोष देना असङ्गत है, यहाँ तक कि अन्याय है।

—दत्ता

सच्चे आनन्दका सुधा-पात्र तो अपव्ययके अविचारसे ही ऊपर तक भर उठता है।

—शेष प्रश्न

कर्तव्यके अन्दर जो आनन्द मालूम होता है वह आनन्द नहीं, आनन्दका भ्रम है, वास्तवमें दुःखका ही नामान्तर है। उसे बुद्धिके शासनसे ज़बर्दस्ती आनन्द मानना पड़ता है। पर वह तो बन्धन है।

—शेष प्रश्न

जिसे पहचानते नहीं, उस पर अश्रद्धा करके अपनेको छोटा मत बनाओ।

—शेष प्रश्न

अविवाहिता प्रौढ़ाः—वास्तवमें स्त्रियोंके लिए यही समय निःसंग जीवन होनेके कारण सबसे बुरा होता है। इसीसे शायद असहिष्णु, कपटी, पर-छिद्रान्वेषी,—यहाँ तक कि निष्ठुर होकर सब देशके पुरुष इस अविवाहिता प्रौढ़ा स्त्रियोंसे बचकर चलना चाहते हैं।

—शेष प्रश्न

तेजीका भी एक भारी आनन्द है,—क्या गाडीकी और क्या इस जीवनकी। मगर जो डरपोक हैं वे चल नहीं सकते। वे सावधानीसे धीरे-धीरे चलते है, सोचते हैं, पैदलका कष्ट जो बच गया वही उनके लिए काफी है, मार्गको धोखा देकर वे खुश है, अपनेको धोखा देनेका उन्हें भान ही नही होता।

—शेष प्रश्न

सब तरहके मतो पर वही श्रद्धा रख सकता है, जिसके अपने मतकी कोई बला नहीं। शिक्षाके द्वारा विरुद्ध मतकी चुपचाप उपेक्षा की जा सकती है, पर उसपर श्रद्धा नही की जा सकती।

—शेष प्रश्न

समाज सुधारकः—कर्मके जगत्‌में आदमीके व्यवहारका मेल ही बडा मेल है, मनका नही। मन हो तो बना रहे; अन्तःकरणका विचार अन्तर्यामी करेंगे, हमारा काम व्यावहारिक एकताके बिना नही चल सकता। यही हमारी कसौटी है,—इसीसे हम जाँच करते हैं। बाहरसे अगर स्वरमें मेल न हो तो केवल दो जनोंके मनके मेलसे संगीतकी सृष्टि नही होती, वह तो सिर्फ कोलाहल ही कहलायेगा। राजाकी जो सेनाएँ युद्ध करती हैं, उनकी बाहरकी एकता ही राजाकी शक्ति है। मनसे उसे कोई मतलब नही। नियमका शासन संयम है—और यही हम लोगोंकी नीति है। इसे छोटा बनानेसे मनके नशेके लिए खुराक जुटाई जा सकती है, और कुछ नहीं। यह उच्छृङ्खलताका ही नामान्तर है।

—शेष प्रश्न

विवेक-बुद्धि ही संसारमें सबसे बडी चीज़ नही है। विवेककी दुहाई देनेसे ही समस्त उचित-अनुचितकी मीमांसा नही हो जाती।

—शेष प्रश्न

जीवनकी बहुत-सी बड़ी चीज़ोंको हम तब पहचान पाते हैं, जब उन्हें खो देते हैं।

—शेष प्रश्न

संसारमें यह व्यवस्था तो प्राचीन कालसे चली आ रही है कि एक के साथ दूसरेका मेल नहीं खाता, तो जो शक्तिशाली होता है वह कमज़ोरको दण्ड देता है।

—शेष प्रश्न

इसी तरह मनुष्य अपनेको सुधारते हुए आज मनुष्य हो सका है। भूलसे तो कोई डर नहीं, जब तक कि दूसरी तरफका मार्ग खुला है। वह मार्ग आँखोंके सामने बन्द दिखाई देता है तभी तो समस्या कठिन होती है।

—शेष प्रश्न

गाली देकर सिर्फ अपमान ही किया जा सकता है, मतकी प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। कठोर बात ही दुनियामें सबसे ज्यादा कमज़ोर होती है।

—शेष प्रश्न

आदर्श या आइडिया सिर्फ दो चार आदमियोंके लिए ही है,—इसीमें उसकी क़ीमत है। उसे साधारणके बीच खींच लानेमें फिर वह पागलपन हो जाता है, उसका शुभ मिट जाता है, और बोझ असह्य हो जाता है।

—शेष प्रश्न

पोथीकी विद्या जब तक मनुष्योंके सुख-दुःख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोहके साथ सामंजस्य नहीं कर पाती तब तक पुस्तकोंके पढ़े हुए कर्तव्य-ज्ञानका फल मनुष्योंको बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और संसारमें किसीका भी कल्याण नहीं करेगा।

—श्रीकान्त, पर्व ४

अनुकरणसे मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञानसे।

—शेष प्रश्न

अभिवादनके उत्तरमें किसने कितना हाथ उठाया, कौन कितना पीछे हट गया, नमस्कारके प्रति-नमस्कारमें किसने कितना सिर नवाया—इस बातको लेकर मर्यादाकी लड़ाई सभी देशोंमें है। अहंकारके नशेकी खुराक तुम्हें अपनी पाठ्य-पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें मिलेगी।

—विप्रदास

कठोर बातका यह स्वभाव ही है कि वह अपने ही भारसे आप कठोरतर होती जाती है।

—विप्रदास

अनिश्चित पथसे एक सुनिश्चितकी आशा ही मनुष्यको पागल बनाकर निरंतर धक्का देकर चलाया करती है।

—नया विधान

चरित्रहीन (शरत्का अपना उपन्यास) परः—सुन रहा हूँ कि उसमें मेसकी नौकरानीके रहनेके कारण रुचिको लेकर जरा चख-चख मचेगी। मचने दीजिये। लोग कितनी ही निन्दा क्यों न करें। जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतना ही अधिक पढ़ेंगे। वह भला हो या बुरा, एक बार पढ़ना शुरू करने पर पढ़ना ही होगा। जो समझते नहीं हैं, जो कल्याणका मर्म नहीं जानते, वे शायद निन्दा करेंगे। पर निन्दा करने पर भी काम बनेगा। किन्तु वह साइकोलॉजी (मनोविज्ञान) और एनलिसिस (विश्लेषण) के सम्बन्धमें बहुत अच्छा है; इसमें सन्देह नहीं। और यह एक सम्पूर्ण वैज्ञानिक नैतिक उपन्यास (Scientific Ethical Novel) है!

—पत्रावली-उपेन्द्रनाथ गंगोली को

पाप छिपानेसे और बढ़ता है।

—विराज बहू

चरण स्पर्शः—वह कुसस्कार है। भद्र समाजमे न चलने वाला खोटा सिक्का है।

—विप्रदास

विभिन्न कर्म-पद्धतियोंके बीच भी सच्ची एकता निहित रह सकती है, यह सत्य स्वीकृत न होनेसे ही गडबड होती है।

—तरुणोंका विद्रोह

पढकर आनन्दातिरेकसे आँखे गीली न हो जायें, तो वह कहानी कैसी ?

—पत्रावली–उपेन्द्रनाथ गंगो० को

चरित्रहीन परः—कौन कहता है कि मै गीताकी टीका लिख रहा हूँ ? चरित्रहीन इसका नाम है ! पाठकको पहलेसे ही इसका आभास दे दिया गया है। यह सुनीतिसंचारिणी सभाके लिए भी नही है और स्कूल-पाठ्य पुस्तक भी नही है। अगर लोग टालस्टायके रिजरेक्शन (Resurrection) को एक बार भी पढते है, तो चरित्रहीनके विपयमें कहनेको कुछ भी नही रहेगा। इसके अलावा जो कलाके तौर पर, मनोविज्ञानके तौर पर महान् पुस्तक है, उसमे दुश्चरित्रकी अवतारणा रहेगी ही।

—पत्रावली–फणीन्द्रनाथ पाल को

अनुभव दूरदर्शिता आदि केवल शक्ति प्रदान ही नही करते, शक्तिका हरण भी करते है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

लिखनेमे शीघ्रता मुंशीकी योग्यता है, लेखककी नही।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

मनुष्यकी एक उम्र है जिसके बाद काव्य कहो या उपन्यास कहो लिखना उचित नहीं। अवसर ग्रहण करना ही कर्तव्य है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

बुढ़ापा है, मनुष्यको दुःख देनेका समय, तब मनुष्यको आनन्द देनेका अभिनय करना वृथा है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

जिस आदमीने अपना सब कुछ दे दिया है, उसे देना देना नहीं है, पाना है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

चिरन्तनकी दुहाई शरीरके ज़ोरसे दी जा सकती है और किसी तरह नहीं। वह मृगतृष्णा है।

—पत्रावली–अतुलानंद राय को

हृदयकी कोमलता और दुर्बलता एक चीज़ नहीं है।

—जागरण

दुनिया सिर्फ दुकान ही नहीं है। बटखरेसे तौलकर दर चोख देनेसे ही मनुष्यका मनुष्यके प्रति कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। क्षमताहीन मनुष्यको भी जीनेका अधिकार है—काम करनेकी उसकी सामर्थ्य लुप्त हो गई है, ज़िन्दा रहनेका उसका अधिकार एक मात्र इसी हेतुसे छीना नहीं जा सकता।

—जागरण

कर्तव्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको नाप-जोखकर देखा जाय।

—जागरण

लगान तुम्हारा (जमींदार) प्राप्य हो सकता है, इसीसे उसका औचित्य प्रमाणित नहीं हो जाता।

—जागरण

संसारकी सभी चीजे सफाई और साचीका सहारा लेकर हमारे सामने हाज़िर नही हो सकती, इसीलिए उन सबको मिथ्या मानकर अगर हम अस्वीकार करेगे तो हमे अनेक अच्छी चीज़ोसे वंचित रहना होगा।

—चरित्रहीन

गुंडोमे क्या भले आदमियोसे अधिक हिम्मत होती है? बुरे काम कर सकनेको ही हिम्मत नही कहते।

—चरित्रहीन

बूढे आदमियाके आगे कोई युक्ति युक्ति ही नही है। वे अपने प्रयोजनसे बढकर संसारमें और कुछ देख ही नही पाते।

—चरित्रहीन

लेकिन दूसरेके वक्त (न्याय विचार करनेमे) मनुष्य अनेक बातोंको जानबूझकर भी ज़ोर करके ज़बर्दस्ती भूल जाना चाहता है। वह अंधेको सूझतेकी सज़ा देकर अपनेको बहादुर समझता हैं। दूसरेका विचार करते समय उसे यह बात याद नही आती कि आँखे न रहने पर उसके स्वयं गढेमें गिरनेकी सम्भावना उस आदमीकी अपेक्षा तनिक भी कम नही है।

—चरित्रहीन

दो तरहके अंधे होते है। जो लोग आँखे मूँदकर चलते है, उनके बारेमें तो चिन्ता नही करनी पडती—उनको पहचान लिया जाता है। किन्तु जो लोग दोनो आँखे खोले देखते हुए चलते है, लेकिन असलमे देख नही पाते, उन्हींके कारण सारी गडबडी है। वे आप भी ठगे जाते है और दूसरोंको भी ठगनेसे बाज़ नही आते।

—चरित्रहीन

मौजूदा समाजके हम मानव-प्राणी जिन वस्तुओंको या जीवनके जिन क्रमोंको अत्यंत आवश्यक समझते हैं और जिनके सहारे हम अपना संसार चलाते हैं, उनमेंसे अधिकांश निरर्थक एवं सारशून्य हैं।

—जागरण

मुलम्मेसे तुम अनाड़ीको बहका सकते हो, किन्तु जिस आदमीने जल-जलकर सोनेके रंगको पहचान लिया है, और इस दुःखके कारोबारमें जिसकी भरी हुई नाव डूब गई है, उसको तुम किस तरह धोखा दोगे?

—चरित्रहीन

"मनुष्यके रक्तके साथ अगर पाप घुला-मिला न होता, तो तुम्हारी ही बात सत्य होती (जो निर्मल है, जो शुभ है, उसीको सर्वोपरि स्थान देना चाहिए)। एक न्यायके सिवा संसारमें और कुछ भी न रहने पाता। दया, माया, ममता, क्षमा आदि हृदयकी कोमल वृत्तियों का तब कोई नाम भी नहीं जानता। तुमने अभी सूर्यके प्रकाशके सादे रंगके साथ न्यायकी तुलना की। किन्तु सादा या श्वेत रंग क्या सभी रंगोंके सम्मिश्रणसे नहीं उत्पन्न होता? वही सादा प्रकाश जैसे त्रिकोण काँचमें पड़कर रंगीन हो जाता है, वैसे ही न्याय भी अन्याय-अधर्म, और पाप-तापके टेढ़े मार्गसे होकर दया, माया, ममता और क्षमाके रूपमें विचित्र होकर दिखाई देता है। मैं मानती हूँ कि अन्यायको क्षमा करना अधर्मको आश्रय देना है, किन्तु यह बात भी तो स्वीकार किये बिना मैं नहीं रह सकती कि अधर्म धर्मका ही एक रूप है—एक पहलू है।

—चरित्रहीन

विद्याके न होने पर अविद्या बैर ही लेती है। इसीने मनुष्य जो नहीं जानता वही दूसरेको जनाना चाहता है, जो स्वयं नहीं समझता उसे दूसरेको समझाना चाहता है।

—चरित्रहीन

मनुष्यका ऐसा बुरा स्वभाव है कि जो उसके बूतेके बाहर होता है, उसीके प्रति उसे सबसे बढकर लोभ रहता है। भगवान्‌को पाया नही जा सकता, इसीलिए तो मनुष्य इस तरह अपना सर्वस्व देकर उनको चाहता है।

—चरित्रहीन

आज्ञा जब सचमुच आज्ञाके रूपमें अकुण्ठित भावसे निकल आती है, तब वह चाहे जिसके मुँहसे निकले, आदमी न जाने किस तरह यह निश्चित अनुभव कर लेता है कि इसे अग्राह्य नही किया जा सकता।

—चरित्रहीन

साहसका बढना और निर्भीकताका उपार्जन करना एक चीज़ नही है। एक देहकी है, दूसरी मनकी। देहकी शक्ति और कौशल बढनेसे अपेक्षाकृत दुर्बल और कौशल न जानने वालेको हराया जाता है, लेकिन निर्भयताकी साधनासे शक्तिमानको परास्त किया जाता है, संसारमें उसे कोई बाधा नही दे सकता; वह अजेय होता है।

—निबन्धावली-सत्याश्रयी

दुर्बलके प्रति अत्याचार करनेमे जिन्हे संकोच नही होता, सबलके तलवे चाटनेमें भी उन्हें ठीक उतना ही संकोच नही होता।

—निबन्धावली-सत्याश्रयी

अत्याचार निवारण करनेका भार हमें खुद लेना चाहिए, और हिन्दू-मुसलिम एकता नामकी अगर कोई चीज़ हो तो उसे पूरा करनेका भार मुसलमानोंके ऊपर छोड देना चाहिए।

—निबन्धावली—वर्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्या

कड़ी बात कह सकना ही संसारमें कठिन काम नही है। मनुष्यका अपमान करनेसे अपनी मर्यादाको ही सबसे ज़्यादा चोट पहुँचती है।

—निबन्धावली—और प्रश्न

ऐश्वर्यको अकेले भोगनेकी चेष्टा करते ही वह अपने आपको आप ही व्यर्थ कर देता है। जो सभीका है वहाँ एक आदमीका लोभ परास्त होगा ही।

—निबन्धावली—साहित्य और नीति

संसारमें बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें छोड़ने पर ही पाया जाता है, हिन्दू-मुसलिम एकता भी उसी तरहकी चीज़ है। जान पड़ता है, इसकी आशा बिल्कुल छोड़कर काममें लग जा सकने पर ही शायद एक दिन इस अत्यंत दुष्प्राप्य निधिके दर्शन मिलेंगे। कारण, तब मिलन केवल एककी चेष्टासे नहीं होगा, वह होगा दोनोंकी हार्दिक और सम्पूर्ण इच्छाका फल।

—निबन्धावली—वर्त्तमान हिन्दू मुसलिम समस्या

सभी जहाँ पर बाज़ारका-सा शोरगुल करें वहाँ विचारके बदले अविचार ही अधिक होता है।

—देना पावना

दुनियाके अव्वल नम्बरके चालाक लोग भी कभी-कभी बेढब गलती कर बैठते हैं; नहीं तो यह संसार एकदम मरुभूमि बन जाता, कहीं रसकी भाप भी जमनेको जगह न पाती।

—देना पावना

जिसकी जितनी शक्ति है, वह उतना ही बड़ा दस्यु है। सुविधा और सामर्थ्यके माफिक दूसरेका गला दबाकर छीन लेना ही इन लोगोंका काम है। यही तो दुनिया है, यही तो समाज है, यही तो मनुष्यका धंधा है।

—देना पावना

कोई अध्यापक है, सिर्फ इसीलिये दुनियाके छल प्रपंचके कामोंसे अलग मान लेना दुराशा मात्र है।

—नया विधान

दुर्बल प्रकृतिके आदमियोंका स्वभाव ही यह होता है कि वे काल्पनिक मानसिक पीड़ा और असंगत मान गुमानके द्वारसे क़दम-ब-कदम तेज़ीसे नीचे उतरते चले जाते है।

—नया विधान

"एक आदमीके अपराधका दण्ड दूसरे आदमीको क्यो भोगना पडता है? भोगना पडता है इतना ही जानती हूँ, किन्तु क्यो सो नही जानती।"

—देना पावना



उर्दू शायरी

१. शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२. शेर-ओ-सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३. शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४. शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५. शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६. शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७. वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८. मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९. धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०. मेरे बापू	श्री हुकमचन्द बुखारिया	२॥)
११. पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२. खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३. खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४. चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५. कालिदासका भारत [भाग १]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
१६. कालिदासका भारत [भाग २]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
१७. हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	२॥)
१८. हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन २	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	२॥)

नाटक

१९. रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
२०. रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
२१. पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
[illegible]	[illegible]	२॥)

ज्योतिष

२३.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२४.	केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
२५.	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२६.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२७.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
२८.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२९.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२।।)
३०.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
३१.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३२.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३३.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२।।)
३४.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३५.	कालके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उपन्यास

३६.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)

सूक्तियाँ

३९.	ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
४०.	शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

संस्मरण, रेखाचित्र

४१.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४३.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४४.	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

४५. एशियाकी राजनीति — श्री परदेशी साहित्यरत्न — ६)

निबन्ध, आलोचना

४६. जिन्दगी मुसकराई — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)
४७. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद — श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' — ३)
४८. शरत्‌के नारी-पात्र — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी — ४॥)
४९. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? — श्री रावी — २॥)
५०. बाजे पायलियाके घुँघरू — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)
५१. माटी हो गई सोना — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ३)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५२. भारतीय विचारधारा — श्री मधुकर एम० ए० — २)
५३. अध्यात्म-पदावली — श्री राजकुमार जैन — ४॥)
५४. वैदिक साहित्य — श्री रामगोविन्द त्रिवेदी — ६)

भाषाशास्त्र

५५. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन — श्री भोलाशंकर व्यास — ५)

विविध

५६. द्विवेदी-पत्रावली — श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' — २॥)
५७. ध्वनि और संगीत — श्री ललितकिशोर सिंह — ४)
५८. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान — श्री सम्पूर्णानन्द — १)